CONTENTS

Chapter 1

DEFINITION, SCOPE, VALUE AND METHODS OF CHILD PSYCHOLOGY

(बाल मनोविज्ञान की परिभाषा, विषय-विस्तार, उपयोगिता और पद्धतियाँ)

Q. 1.—What is Child Psychology ? What is its Scope and Value ?

बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) वह विधायक या वर्णनात्मक विज्ञान (Positive Science) है जो बच्चों के शारीरिक (Physical) और मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक (Mental or Psychological) विकास (Development) का अध्ययन उनके जन्मकाल से (From brith) परिपक्वता-काल तक (to maturity) करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि बाल मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान (General-Psychology) की तरह एक ऐसा विज्ञान है जो बच्चे के जन्मकाल से लेकर उसकी किशोरावस्था तक उसके शारीरिक और मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं (Aspects) का अध्ययन उनकी वास्तविक अवस्था में करता है। यह इस बात का पता लगाता है कि जब बच्चे उत्पन्न होते हैं तो उनमें कौन-कौन-सी शारीरिक और मानसिक योग्यताएँ विद्यमान रहती हैं। पुनः उन योग्यताओं की विवृद्धि कैसे होती है तथा उनके विकास के लिये क्या आवश्यक है। यह बाल मन का अध्ययन करने

के लिये सभी वैज्ञानिक नियमों तथा पद्धतियों का आश्रय लेता है। यह बालकों की वास्तविक परिस्थिति का अध्ययन उनकी विभिन्न अवस्थाओं में निष्पक्ष भाव से करता है। इतना ही नहीं, बल्कि बच्चों के किसी व्यवहार की व्याख्या करने के लिये उनके वास्तविक कारणों को व्यक्त करता है। इसका एकमात्र कार्य बालकों के व्यवहार, रुचि तथा विचित्रताओं का अवलोकन करके उनके मन का अध्ययन करना है। यह भी बाल मन को जानने के लिये प्रयोगात्मक इत्यादि पद्धतियों का उपयोग करता है। अतएव हम कह सकते हैं कि बाल मनोविज्ञान वह समर्थक विज्ञान है जो बच्चों के जन्मकाल से लेकर परिपक्वता तक के शारीरिक तथा मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करता है। (Child Phychology is a positive science which studies the Physical and Psychological development of children from brith to maturity.)

बाल मनोविज्ञान का विषय विस्तार (Scope) का वर्णन करने के लिये यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बाल मनोविज्ञान बच्चों के व्यवहार के स्वरूप (Nature) और विकास (Development) के प्रत्येक तथ्य (Fact) को जानने की कोशिश करता है क्योंकि वह बच्चों के प्रत्येक व्यवहार को नियंत्रित करने का अभिलषित रहता है। इतना ही क्यों, बल्कि वह उनके भावी जीवन को जानने की भी कोशिश करता है, इसलिये उनका लालन-पालन क्योंकर हो इसको भी व्यक्त करने का प्रयास

करता है। सारांश यह है कि बाल मनोविज्ञान का एकमात्र ध्येय बच्चों के आहार-व्यवहार को नियंत्रित करना तथा उनके भावी जीवन को सफल बनाने के लिये उनका लालन-पालन करना है। अतः इस विज्ञान के लिये समुचित वातावरण को व्यक्त करना तथा अवांछनीय अंगों (Conditions) का निराकरण करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा करने के लिये और बाल-मन के वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त करने के लिए यह बाल-मन की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करता है। उदाहरणार्थ, यह इस बात का अध्ययन करता है कि बच्चों में विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का आविर्भाव क्योंकर होता है और इनके क्या कारण हैं। बच्चों में शिक्षण-शीलता (Learning) क्योंकर होती है, समाज के सम्पर्क में इनके व्यवहार कैसे परिष्कृत (Modified) होते हैं। इनमें खेल-कूद, व्यक्तित्व, चरित्र आदि का आविर्भाव तथा निर्माण क्योंकर होता है। संवेग (Emotions) स्थायी-भाव तथा भाव आदि क्योंकर उत्पन्न होते हैं। कहने का मतलब यह है कि बाल मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय बालकों की विभिन्न मानसिक अवस्थाएँ तथा क्रियाएँ (Cognition, Conation & Affection) हैं। इतना ही नहीं, बल्कि बाल मनोविज्ञान बालकों के विभिन्न शारीरिक पहलुओं का भी अध्ययन करता है, क्योंकि शरीरिक और मानसिक विकास का सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ है। यह बालकों के असाधारण अभियोजन का भी अध्ययन करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि बाल मनोविज्ञान के विषय-विस्तार के अन्तर्गत वे सभी पहलू

आ जाते हैं जिनसे कि बाल मन को जानकर बालकों को नियंत्रण करने और निर्देश करने में सहायता मिलती है !

अब बाल मनोविज्ञान की उपयोगिता (value) पर प्रकाश डालने के लिये हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि संसार में जितने भी मनुष्य हैं वे सभी यही चाहते हैं कि उनकी सन्तान जीवन सुखमय व्यतीत करे। सभी माता-पिता की यही अभिलाषा रहती है कि हमारे बच्चे धनी, मानी, यशस्वी, वीर, विद्वान् या नेता आदि बनें। लेकिन यह सब केवल चाहने मात्र से नहीं हो सकता, बल्कि वैसा अपने बच्चों को बनाने से होगा। वैसा भी हम बच्चों को उसी समय बना सकते हैं जब हमें बच्चों की योग्यता और रुचि का ज्ञान हो। यह ज्ञान भी हमें बाल मनोविज्ञान ही द्वारा हो सकता है। आज बाल मनोविज्ञान के प्रसाद से सभी माता-पिता बच्चों के मानसिक तथा शारीरिक विकास तथा स्वरूप के विषय में जानते हैं। वे उन सभी नियमों को जानते हैं जिनका पालन करना बच्चों के लालन-पालन के लिये अनिवार्य है। जो माता-पिता शिक्षित हैं तथा जिन्हें बाल मनोविज्ञान का परिज्ञान है वे अपने बच्चों का लालन-पालन मनोवैज्ञानिक ढंग से करते हैं। वे उनमें किसी तरह की बुराई नहीं आने देते और यदि किसी कारणवश कोई बुराई आ भी जाती है तो वे धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिक नियमों का पालन करके उन्हें दूर कर देते हैं। जो माताएँ मूर्खा होती हैं वे अपने अज्ञान के कारण बच्चों को डरपोक और निराशावादी बना देती हैं। लेकिन इस मनो-

विज्ञान को जाननेवाली मातायें अपने बच्चों को समाज का सुन्दर प्राणी बना देती हैं जो अपने जीवन में सदा सफल रहते हैं। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि हम जैसा चाहें वैसा अपने बच्चे को बना सकते हैं क्योंकि जो बच्चा लड़कपन में जिस ढाँचे में ढल जाता है वह वैसा ही जीवन-पर्यन्त बना रह जाता है। इसलिये इस विज्ञान के प्रसाद से माता-पिता को बच्चों के लालन-पालन में विशेष सहायता मिलती है।

शिक्षा-क्षेत्र में भी बाल मनोविज्ञान का कम महत्व नहीं है। पहले जब इस विज्ञान का प्रचार नहीं हुआ था तो बड़े-से-बड़े पंडित भी विद्यार्थियों के विद्यार्थी-जीवन सफल बनाने में समर्थ नहीं होते थे। लेकिन आज इसी मनोविज्ञान का प्रसाद है कि आज के शिक्षा-शास्त्री विद्यार्थियों की योग्यता और रुचि के अनुसार ही तो उनका अध्यापन करते हैं। कठिन-से-कठिन विषय को भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर पढ़ाते हैं जिससे विषय सरल और सार्थक मालूम होता है आज ऐसे-ऐसे प्रयोगों का आविर्भाव हुआ है जिनके द्वारा बच्चों की योग्यता और रुचि के अनुसार ही शिक्षा दी जाती है। अब कमजोर या दोषी विद्यार्थी को पीटने का दण्ड नहीं दिया जाता या और साथियों के सामने उसे लज्जित नहीं किया जाता बल्कि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का आश्रय लेकर उन दोषों को दूर किया जाता है। अब विद्यार्थियों की रुचि उत्पन्न करने के लिये तरह-तरह के पुरस्कार और खेल-कूद का प्रबन्ध पाठशालाओं में किया गया है। अब शिक्षा-पद्धति भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक बनाने का प्रयास हो रहा है।

इसके अतिरिक्त बाल मनोविज्ञान स्वास्थ्यलाभ करने में भी बहुत सहायक हो रहा है जिस पर विशेष रूप से प्रकाश डालना आवश्यक नहीं। हाँ, इसका आश्रय मनुष्य-जीवन के सभी पहलुओं को प्राप्त है।

Q. 2.—Describe the purposes and methods of Child study.

बाल मनोविज्ञान (Child psychology) की मुख्य समस्या (problem) बच्चों के व्यवहार को नियन्त्रित करना, समझना, और सुचारुरूप से सञ्चालित (guide) करना है। कहने का अभिप्राय यह है कि बाल मनोविज्ञान बच्चों के भावी जीवन को सफल और सुखी बनाने के लिये उनके व्यवहार को समझने की कोशिश करता है। जब वह उनके व्यवहार को समझ जाता है तब उनको इस प्रकार से नियंत्रित करता है कि बच्चे एक सुयोग्य सामाजिक (social) प्राणी बन सकें। व्यवहार-मात्र को नियंत्रित करके ही यह विज्ञान संतुष्ट नहीं हो जाता अपितु उनको एक नियमित दिशा की ओर प्रवाहित करने की भी परिचेष्टा करता है। यदि किसी बालक में शारीरिक या मानसिक किसी प्रकार का दोष (defect) रहता है तो वह उस दोष के कारण को जानने की कोशिश करता है। कारण के मालूम हो जाने पर उस दोष को भगाने की कोशिश करता है। दोष निर्मुक्त होकर बच्चा भी अपने को समाज के अनुरूप अभियोजित करने में समर्थ होता है। आज सभी यह जानते हैं कि बच्चों के भावी जीवन की सफलता बचपन के जीवन पर ही निर्भर

करती है। हम जिस बच्चे को जिस प्रकार से पालन-पोषण करते हैं वह बच्चा उसी तरह का जीवन भर बना रह जाता है। यही कारण है कि वर्त्तमान बाल मनोविज्ञान के पंडित बच्चों के जन्मकाल से ही उनके व्यवहार को हर तरह से समझने की कोशिश करते हैं। यदि बच्चे में किसी तरह की बुराई नहीं रहती तब तो वह सामाजिक प्राणी शीघ्रतया बन जाता है। लेकिन किसी प्रकार का दोष रहने पर वह अपने को समाज में अभि-योजित करने में असमर्थ होता है। इसीलिये बाल मनोविज्ञान बच्चों के व्यवहार को नियंत्रित करने का सतत प्रयास करता है। उन्हें किस प्रकार के ढाँचे में ढाला जाय इस समस्या को बाल-मनोविज्ञान ही सुलझा सकता है। बच्चों के जीवन को सफल बनाने के लिये बाल मनोविज्ञान उनके व्यवहारों को नियंत्रित करता है। सारांश यह है कि बाल-मन की उलझनों को सुल-झाने और बालकों को सुयोग्य सामाजिक प्राणी बनाने के लिये वह उनके व्यवहार को predict, control और guide करता है। यही बाल मनोविज्ञान की प्रबल समस्या (problem) है। इस प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर के लिये प्रश्न न० ५१ उत्तर देखिये।

Q 3.—What is child Psychology? Point out some important differences between an adult and child.

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १ का उत्तर देखिये।

अब प्रौढ़ व्यक्ति (Adult) और बच्चे (Child) के प्रमुख अन्तरों को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि बच्चे का शारीरिक (Physical) और मानसिक (Mental) विकास (Development) पूर्णतः नहीं होता है बल्कि ये दोनों दिन-प्रति-दिन विकसित होते रहते हैं लेकिन प्रौढ़ावस्था में शारीरिक और मानसिक विकास अपनी उन्नति की उच्चतम चोटी पर पहुँच जाता है। बच्चों के व्यवहार प्रायः सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनात्मक (Conditional) और अनुकरणात्मक (Imitative) होते हैं किन्तु प्रौढ़ व्यक्ति के व्यवहार प्रायः विचारात्मक (Insightful or thoughtful) होते हैं। बच्चों में विवेचनात्मक शक्ति (Critical capacity) का अभाव रहता है लेकिन प्रौढ़ों में इस शक्ति का भाव अपनी परिपूर्णता पर रहता है। बच्चों का ज्ञान सीमित (Limited) रहता है किन्तु प्रौढ़ों का ज्ञान बच्चों से बहुत ही अधिक रहता है। बच्चों के व्यक्तित्व (Personality) का विकास पूर्णरूपेण नहीं रहता लेकिन सयानों का व्यक्तित्व पूर्णतः विकसित रहता है। बच्चे वर्त्तमान पदार्थ वा घटना के ही सम्बन्ध में सोचने में समर्थ होते हैं लेकिन प्रौढ़ अनुपस्थित के भी विषय में सोचते हैं। बच्चों का सामाजिक विकास (Social development) पूर्णरूपेण नहीं रहता किन्तु सयानों का सामाजिक विकास पूर्णता को प्राप्त रहता है। बच्चों की अपेक्षा सयानों की इच्छाशक्ति विशेष प्रबल होती है। इसीलिये सयानों की क्रियाएँ प्रायः व्यवसायात्मक (Volitional) होती हैं। बच्चों में धार्मिक भाव का अंकुर

आविर्भूत होता है जो प्रौढ़ावस्था में परिपक्व (Matured) होता है। भाषा में भी सयाने बच्चों की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं। इसी प्रकार से और भी कई अन्तर बच्चों और सयानों में पाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चों में क्रियात्मक, भावात्मक और ज्ञानात्मक (Conative, Affective and Cognitive) सभी पहलुओं (Aspects) का विकास (Development) प्रारंभ होता है और उनमें परिपूर्णता प्रौढ़ावस्था में ही आती है।

Q. 4.—Give an idea of the problem that child psychology deals with.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० १ का उत्तर देखिये।

Q. 5.—What methods have been used in the study of children ? Consider briefly the advantages and disadvantages of each of these methods.

बाल-मन का अध्ययन करने के लिये बाल-मनोविज्ञान के पंडितों (Psychologists) ने कई पद्धतियाँ निर्धारित की है। उनमें से कुछ पद्धतियाँ वैज्ञानिक हैं और कुछ अवैज्ञानिक लेकिन उनमें जो पद्धतियाँ प्रमुख हैं यहाँ हम उन्हीं पर संक्षिप्तत: प्रकाश डालेंगे।

(१) विशिष्ट जीवन-वर्णन पद्धति (Biographicalmethod)—बाल-मन के अध्ययन का विशिष्ट जीवन-वर्णन पद्धति बहुत ही प्रधान पद्धति मानी जाती है। आजकल तो इसका विशेष आश्रय नहीं लिया जाता है लेकिन आज के कुछ वर्ष पहले लोग इसीके द्वारा बाल-मन का अध्ययन करते थे। माता-पिता

या अन्य कोई व्यक्ति किसी बच्चे विशेष के बारे में कुछ निरीक्षण करके लिख दिया करते हैं और उसका अध्ययन करके अन्य लोग बच्चों के सम्बन्ध में जानते हैं। लेकिन यह पद्धति विशेष उपयोगी नहीं है क्योंकि इसमें कई त्रुटियाँ हैं। पहली बात तो यह है कि विशिष्ट जीवन-वर्णन में किसी बाल विशेष के विषय में कुछ लिखा जाता है और उसके बहुत से पहलुओं (Aspects) पर प्रकाश नहीं डाला जाता है। माता-पिता प्रायः अपने बच्चों के व्यवहारों का निष्पक्ष अध्ययन करने में असमर्थ हो जाते हैं और उनकी बुराइयों पर ध्यान नहीं देते। निरीक्षण करते समय बहुत से व्यवहार तिरस्कृत हो जाते हैं और उसकी तुलना अन्य बच्चों के साथ नहीं होती। अतः विशिष्ट जीवन-वर्णन से बाल-मन पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि यह पद्धति पूर्णतः सदोष है, अगर इसमें सावधानी से काम किया जाय तो बहुत-सी काम की बातें मालूम हो सकती हैं।

(२) अनियंत्रित निरीक्षण पद्धति—(Uncontrolled-observation)—इस पद्धति के द्वारा भावुक अपने बच्चों के आहार-व्यवहार का निरीक्षण घर पर या अन्य अवस्थाओं में करते हैं और इस प्रकार वे बच्चों के बारे में जानते हैं। लेकिन यह पद्धति कई दोषों से परिपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि निरीक्षक सभी व्यवहारों का अवलोकन नहीं करता प्रायः वह अपना निर्णय असाधारण (Abnormal) व्यवहार को ही देख कर करता है। फिर भी निरीक्षण करते समय वह कोई

रेकार्ड नहीं रखता और बाद में स्मृति (Memory) के आधार पर अपना निर्णय करता है। बहुत-सी प्रमुख बातें भूल जाती हैं और नगण्य बातें याद हो जाती हैं। वह बच्चे के व्यवहार की तुलना अन्य बच्चों के साथ भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त भावुक पक्षपात रहित न होने के कारण अपने बच्चे के व्यवहार की व्याख्या अपने मनोनुकूल ही करते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वे इस पद्धति के द्वारा किसी व्यवहार के कारण को भी जानने में समर्थ नहीं होते क्योंकि वे किसी भी कारण (cause) को नियंत्रित (control) करने में असमर्थ रहते हैं। इसलिये यह पद्धति भी बाल मनोविज्ञान के लिये विशेष हितकर नहीं है।

(३) स्मृति पद्धति (remeniscences)—बाल मनोविज्ञान में स्मृति पद्धति का भी उपयोग होता है। इसके द्वारा बच्चों के सम्बन्ध में या अपने बचपन के सम्बन्ध में स्मृति के द्वारा कुछ सूचनाएँ (informations) दिए जाते हैं। ऐसे वर्णन प्रायः रुचिकर (interesting) हुआ करते हैं लेकिन इनकी उपादेयता बहुत ही कम हुआ करती है। स्मृति के द्वारा जब हम अपने बचपन अथवा अन्य किसी बच्चे के विषय में कुछ प्रकाश डालते हैं तो रुचिकर तथा विचित्र बातें तो याद रहती हैं और अन्य आवश्यक बातें भूल जाती हैं। इसलिये हमलोगों का ज्ञान (knowledge) अधूरा ही (imperfect) होता है। यद्यपि इस पद्धति के द्वारा भी हम कुछ जानने में समर्थ होते हैं तथापि हमारी जानकारी विशेष लाभप्रद सिद्ध नहीं होती है।

(४) प्रश्नावली पद्धति (Questionaires)— इस पद्धति के द्वारा बच्चों से तरह-तरह का प्रश्न किया जाता है और बच्चे उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं। तब उन्हीं उत्तरों के आधार पर उनके मन को जाना जाता है। पहले-पहल प्रयोग करनेवालों में स्टैनले हाल (S. Hall) का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। वर्त्तमान काल में प्रश्न छपे रहते हैं और उन्हीं प्रश्नों के सामने उनका उत्तर लिखना पड़ता है। बहुत अंश में बाल-मन का अध्ययन इस पद्धति से हो जाता है तथापि यह पद्धति अधूरी है क्योंकि इससे मन के सब पहलुओं को जानना कठिन हो जाता है।

(५) व्यवस्थित निरीक्षण (Systematic observation)—इस पद्धति के द्वारा बच्चों की स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं (Natural responses) का अध्ययन स्वाभाविक वातावरण में किया जाता है। बच्चों को इसका ज्ञान भी नहीं रहता है और वे अपना स्वाभाविक व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में प्रदर्शित किया करते हैं। निरीक्षक उनके विभिन्न व्यवहारों को अपने रजिस्टर में नोट करता जाता है। अन्ततोगत्वा वह उनके विभिन्न व्यवहारों की तुलना एक दूसरे से करता है। यह पद्धति बहुत ही विश्वसनीय है क्योंकि इसके निर्णय अधिकांश सत्य और प्रतिपन्न होते हैं। इसे हम वैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला कह सकते हैं। इस पद्धति को प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक काम में लाते हैं। मेकार्थी (Mecarthy) गेसेल (Gesell) आदि पंडितों का इसे विशेष आश्रय प्राप्त हुआ है।

(६) व्यक्ति-इतिहास पद्धति (Case-History Method)—इस पद्धति के द्वारा किसी बच्चा विशेष के सम्बन्ध में जानने के लिये हमलोग उसके माता, पिता, भाई, बन्धु तथा अन्य भावुकों से उसके सामाजिक, नैतिक, शिक्षण, चरित्र तथा विकास (Development) सम्बन्धी बातों की जानकारी प्राप्त करते हैं। जब किसी बच्चे के सामान्य व्यवहार में किसी प्रकार का व्यतिक्रम मालूम होता है तो हमलोग इस पद्धति का आश्रय लेते हैं। यद्यपि इस प्रकार से हमलोगों को बच्चे के सम्बन्ध में बहुत सी बातें मालूम हो जाती हैं लेकिन कभी-कभी जो लोग सूचना देते हैं वे कुछ घटा-बढ़ा देते हैं, इसलिये कुछ कमी आ जाती है। अतः इस दोष से बचने के लिये हमलोगों को पूछे आनेवाले लोगों से ही चालाकी से काम लेना चाहिये तथा बहुत बच्चों के इतिहास को जानकर किसी बच्चा के सम्बन्ध में अपना निर्णय करना चाहिये।

(७) औपचारिक पद्धति (Clinical Method)—इस पद्धति के द्वारा हम ऐसे बच्चों के व्यवहार का अध्ययन करते हैं जिनमें किसी प्रकार का संवेगात्मक (Emotional) और अभियोजनात्मक (Adjustmental) गड़बड़ी (Disturbance) रहती है। इस पद्धति के द्वारा हम उस गड़बड़ी के कारण को जान जाते हैं और उसे दूर कर देते हैं। यह पद्धति बच्चों की बुराइयों के कारणों को जानकर उन्हें दूर करने के लिये रामबाण का काम करती है।

(८) मनोदैहिक पद्धति (Psycho-physical Me-

thod)—इस पद्धति के द्वारा बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास (Development) के संबन्ध को जाना जाता है। वातावरण (Environment) और वंशानुक्रम (Heredity) का प्रभाव बच्चे के आहार-व्यवहार पर क्या पड़ता है, इसका ज्ञान हमें इसी पद्धति से होता है। वस्तुतः इसके द्वारा हम बच्चों के विकास का ज्ञान पूर्णतः प्राप्त कर लेते हैं।

(९) प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental method)-यह पद्धति बाल मनोविज्ञान के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें नियंत्रित अवस्थाओं (Controlled Conditions) में बच्चों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इसके सभी अंगों पर नियंत्रण के कारण मनोनुकूल पहलुओं का अध्ययन एक ही अवस्था में विभिन्न बालकों का होता है। परिणाम भी अत्यन्त विश्वसनीय होते हैं। यह पद्धति बाल मनोविज्ञान के लिये बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। लेकिन कभी-कभी इसमें अस्वाभाविक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना पड़ता है। खैर! जो कुछ भी हो, यही पद्धति सबसे महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

(१०) इसके अतिरिक्त बाल मनोविज्ञान की अन्य पद्धतियाँ, जैसे, (Statistical method, measurement) आदि हैं लेकिन स्थानाभाव से हम उनका वर्णन यहाँ नहीं करेंगे।

Q. 6.—In what sense child psychology is a science? How can the knowledge of psychology help parents and teachers?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १ का उत्तर देखिये।

Q. 7.—Is child psychology a science ? How are experiments made in child psychology ? Illustrate.

बाल मनोविज्ञान, विज्ञान है कि नहीं, इसका उत्तर देने के लिये हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बाल मनोविज्ञान अन्य विज्ञानों की तरह एक निश्चित आलोच्य विषय (Subject-matter) का अध्ययन विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा करता है। इसके निर्णय भी प्रतिपन्न होते हैं। यह कारण-कार्य (Cause-effect) के नियम पर भी विश्वास करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें विज्ञान को सभी विशेषतायें विद्यमान हैं। अतएव इसे हम एक विज्ञान ही कहेंगे। इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ५ का उत्तर देखिये।

Q 8.—What are the methods employed in Child Psychology ? Which of them do you consider to be satisfacotry ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए प्रश्न नम्बर ५ का उत्तर देखिये।

Chapter 2

HEREDITY AND ENVIRONMENT

(वंशानुक्रम तथा वातावरण)

Q. 9.—What do you understand by heredity ? Do you agree with the view that what

the child will be like in future is determined solely by heredity, if not, why not ?

बालक के मनोविकास के दो उपकरण हैं—पहला है बालक का जन्मजात (Inborn), स्वभाव (Nature) और दूसरा है उसकी बाह्य परिस्थितियाँ। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक की प्रकृति पर उसके वंशानुक्रम का प्रभाव अधिक रूप से पड़ता है। उसका जन्मजात स्वभाव साधारणतः पैतृक सम्पत्ति पर निर्भर करता है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि रूप, रंग और शरीर की बनावट में बच्चा प्रायः अपने माता-पिता जैसा होता है। लेकिन इसके पहले कि हम इस पर संक्षिप्ततः प्रकाश डालें यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वंशानुक्रम (Heredity) का तात्पर्य यह है कि बच्चे में दो प्रकार के गुण विद्यमान रहते हैं। कुछ गुण तो उसमें जन्मजात (Inborn) होते हैं और कुछ गुण अर्जित (Acquired) होते हैं। जन्मजात गुण जातीय (General) और अर्जित गुण विशिष्ट (Specific) होते हैं। जातीय गुण को बच्चे माता-पिता या पूर्व पुरुषों से प्राप्त करते हैं और विशिष्ट गुण अपने जीवन के अनुभव से। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यदि बच्चा अपने पूर्व पुरुषों के गुण को धारण करता है तो हम कहते हैं कि ये गुण इसे वंशानुक्रम से प्राप्त हुये हैं तथा जब वह किसी गुण को अपने जीवन के अनुभव से प्राप्त करता है तो हम उसे अर्जित कहते हैं। दूसरे शब्दों में वंश-शृङ्खला को ही वंशानुक्रम कहते हैं।

अब बच्चे का भावी स्वरूप (Nature) वंशानुक्रम द्वारा

निर्धारित होता है अथवा वातावरण के द्वारा, इसकी विवेचना करने के पूर्व यह व्यक्त करना आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ लोगों का कथन है कि बच्चे का स्वरूप वंशानुक्रम के ही द्वारा निर्धारित होता है किन्तु दूसरे पक्ष के मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि बच्चे का स्वभाव शंतः वातावरण के द्वारा निर्धारित होता है। अब हम इन दोनों का विवेचन संक्षिप्ततः क्रमशः करेंगे।

कितने ही मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि जिस तरह हम अपने शरीर और रूप-रंग को अपने माता-पिता से पाते हैं उसी प्रकार चरित्र भी हम अपने माता-पिता से ही पाते हैं। इस बात की सत्यता की जाँच बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने बहुत सूक्ष्म रूप से की है तथा इसी तथ्य पर आये हैं कि उनके स्वरूप (Nature) वंशानुक्रम से ही प्रभावित होते हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिकों में फ्रांसिस गाल्टन, गोडार्ड, डग्डेल, डा० स्टाबुक, पियरसन और विशिप महाशय का नाम प्रथम आता है।

गाल्टन महाशय ने आठ जुड़वे बच्चों के जीवन का अध्ययन किया इससे पता चला कि इन जुड़वे बच्चों का जीवन एक दूसरे से इतना मिलता-जुलता था, जितना कि एक ही कारखाने की बनी हुई दो घड़ियाँ जो एक ही तरह बनायी गई हों।

डग्डेल और स्टाबुक ने अमेरिका के जुक्स परिवार का अध्ययन किया। इस परिवार का जन्मदाता जुक्स था जो शिकार करके तथा मछलियाँ मारकर जीवन निर्वाह करता था। इस परिवार के लगभग १००० लोगों के जीवन की जाँच से पता चला

कि उनमें से ६०० शैशवावस्था में ही मर गये, ३१० भिखमंगे हुये, २४० जीवन भर रोगग्रस्त रहे, १३० को अनेक प्रकार की सजायें हुईं जिनमें सात खूनी थे। केवल २० व्यक्तियों ने अपना जीवन रोजगार सीखकर व्यतीत किया।

पियरसन ने वेजवुड-गर्विन गाल्टन परिवार के इतिहास के १००० लोगों का अध्ययन किया। इससे पता चला कि इस स्थान के सैकड़ों लोगों ने प्रतिष्ठा के स्थान पाये और समाज की बड़ी सेवा की। इस परिवार के लोग पाँच पीढ़ी तक बराबर इङ्गलैंड की रायल सोसाइटी के सदस्य रहे।

गोडार्ड महाशय ने कालीकाक परिवार का अध्ययन किया। अमेरिका के एक सिपाही कालीकाक ने दो विवाह किया। पहला एक मन्द बुद्धि वाली युवती के साथ तथा दूसरा एक सुशिक्षित धर्मपरायण स्त्री के साथ। गोडार्ड ने पहली महिला से उत्पन्न ४८० व्यक्ति पाये तथा दूसरी महिला से ४९६। पहली महिला की सन्तान में १४३ मन्द बुद्धि थे। इस परिवार में दुराचार का भी आधिक्य था। इनमें से ७१ व्यक्ति वेश्यागामी, शराबी, और चोर आदि थे। कालीकाक की दूसरी स्त्री से उत्पन्न लोगों में से नामी प्रोफेसर, डाक्टर, वकील तथा राज्य के प्रतिष्ठित पदाधिकारी हुए।

विंशिप महोदय ने एडवर्ड परिवार का अध्ययन किया। रिचार्ड एडवर्ड ने एलिजाबेथ नामक बुद्धिमती महिला से शादी की। पीछे उसने एक साधारण स्त्री से व्याह कर लिया। पहले विवाह से पैदा हुई सन्तानों में अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति

उत्पन्न हुये तथा दूसरे सम्बन्ध से कोई भी सामाजिक वा प्रतिष्ठित नहीं पैदा हुआ।

उपर्युक्त विवेचना से यह सिद्ध होता है कि बालकों की प्रतिभा उनके वंशानुक्रम के आधार पर ही निर्धारित होती है परंतु यह कहना सर्वथा सत्य न होगा। क्योंकि जिस प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिकों ने वंशानुक्रम का अध्ययन किया है उसी प्रकार अन्य उत्साही पुरुषों ने वातावरण का अध्ययन किया है तथा उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि बालकों के स्वरूप निर्धारण में वातावरण का स्थान भी वंशानुक्रम से कम नहीं है। १६वीं शताब्दी के अनेक यूरोपीय विद्वानों का मत था-कि बालक के जीवन में विशेष महत्व वातावरण का है। वंशानुक्रम का तो बहुत तुच्छ प्रभाव होता है इस मत के माननेवालों में फ्रांस के हेल्वाशियस साहब का नाम स्मरणीय है। इसका समर्थन इङ्गलैंड के लाक साहब द्वारा भी हुआ है।

लाक साहब का कथन है कि मनुष्य का मन एक स्वच्छ काले तख्ते के समान है। जिस प्रकार काले तख्ते पर जिस बात को भी चाहें आसानतया लिख सकते हैं उसी प्रकार हमारे स्वच्छ मन पर वातावरण-जनित अनुभवों के कारण अनेक संस्कार स्वतः ही पड़ जाते हैं। जिस बालक को जिस प्रकार के वातावरण में रहने का मिलता है तथा जिस तरह की शिक्षा दी जाती है वह वैसा ही करना सीख लेता है। यही कारण है कि एक अंग्रेज का लड़का जब जन्म लेता है तो वह तुरत ही अंग्रेजी बोलना सीख जाता है।

इस सिद्धान्त के समर्थन के लिये फ्रांस के कैंडोल महाशय ने यूरोप के ५७२ बड़े-बड़े विद्वानों की जीवनी का अनुशीलन किया। इन विद्वानों में इङ्गलैंड की रायल सोसाइटी पेरिस की एकेडमी आफ साइन्स और वर्लिन की रायल एकेडमी के लोग थे। इस अध्ययन से पता चला कि इन विद्वानों में से अनेकों का जन्म धनी घरानों में हुआ था। उन्हें अपनी जीविका के लिये चिन्ता नहीं करनी थी। शिक्षा की सब प्रकार की सुविधा उन्हें मिली हुई थी। जनता एवं सरकार भी हर तरह से उन्हें सहायता करती रही थी।

इस सिद्धान्त की सत्यता निर्धारित करने के लिये यहाँ एक और उदाहरण उल्लेखनीय है। मुरे द्वीप के लोग एक निरी बर्बर जाति के थे। उनकी भाषा में ६ से अधिक लिखने के लिये शब्द नहीं थे। किन्तु जब इन्हीं लोगों को अच्छी शिक्षा दी गई तो वे भी सभ्य जाति के विद्वानों जैसे गणित के विद्वान हो गये।

इसका दूसरा प्रमाण भारतवर्ष के संथाली लोगों में देखा जाता है। इसी प्रकार देश-भक्त भारतीयों के प्रयत्न से हरिजनों में कितना आश्चर्यजनक चमत्कार हुआ है। अब वही हरिजन उच्चपदाधिकारी होकर आश्चर्यजनक कार्य करते पाये जाते हैं, जिसका उनके वंश में नामोनिशान न था। उनके इस तरह के व्यवहार का एक मात्र कारण है उनकी शिक्षा। शिक्षा के बल पर ही वे अपने को इतना ऊँचा स्तर तक उठा पाये हैं।

हेवडे महाशय का कहना है कि वंशानुक्रम का प्रभाव

बालक के विकास में बिलकुल तुच्छ है यह एक प्रकार का भूत है जो तीक्ष्ण बुद्धि से विचार करने पर तुरत भाग जाता है। बालक की पैतृक सम्पत्तियाँ ऐसी हैं जिनको हम चाहें जिस उपयोग में ला सकते हैं। यदि बालकों को शिक्षा दी जाय तो वे उन गुणों का प्रदर्शन करेंगे, जिनको उनके पूर्वजों में बिलकुल नहीं देखा गया था।

ऊपर के इस विवेचना से यह स्पष्टरूपेण सिद्ध होता है कि बालकों के विकास में वातावरण का प्रभाव बहुत ज्यादा है, किन्तु यह सिद्धांत भी अकाट्य नहीं है। क्योंकि हम ऊपर ही बतला चुके हैं कि बालकों के विकास में वंशानुक्रम का क्या प्रभाव पड़ता है। दोनों पक्षों के विद्वानों ने अपने-अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये सन्तोषजनक प्रमाण भी दिये हैं। किन्तु ऐसा कहना सर्वथा भ्रममूलक होगा कि बालकों के विकास पर किसी एक सिद्धांत का असर पड़ता है। सच बात तो यह है कि बालकों के स्वरूप निर्धारण में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का समान हाथ है। जिस प्रकार एक बीज को विशाल वृक्ष होने के लिये सुन्दर बीज ऊपजाऊ-मिट्टी, हवा, पानी तथा सम्यक् संयम की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार एक बालक को सुन्दर नागरिक बनने के लिये सुपरिवार का होना तथा उचित शिक्षा का पाना दोनों अत्यन्त आवश्यक है।

इस तरह उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि बालकों के भविष्य निर्धारण में केवल वंशानुक्रम की ही प्रधानता नहीं रहती वरन् वातावरण का भी समान ही प्रभाव पड़ता है।

Q. 10.—What is heredity ? Explain the rinciples of the operation of heredity.

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६ के पहले भाग का उत्तर देखें।

वंशानुक्रम (Heredity) की कार्यवाही (Operation) के सिद्धान्तों (Principles) को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इसका अध्ययन विशेष रूप से करने के लिये विद्वानों ने कई नियम निर्धारित किये हैं। उनमें से निम्नलिखित तीन नियम ध्यातव्य हैं।

(१) कीटाणु की निर्विघ्नता— (Continuity of germplasm) बालक अपने माता-पिता से बपौती के रूप में उन सभी गुणों को ग्रहण करता है जो उसे उसके पूर्वजों से मिले हैं। किंतु जो गुण उसके माँ-बाप अपने जीवन काल में अर्जित किये हैं उन्हें वह वंशानुक्रम के आधार पर नहीं मिलता। इसी सिद्धान्त को "कीटाणु की निर्विघ्नता" का सिद्धान्त कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि यदि माता-पिता किसी गुण को अपने परिश्रम द्वारा सीखे रहते हैं तो वह गुण प्रकृति (Heredity) से ही बालकों में नहीं आ जाता वरन् उसे प्राप्त करने के लिये सम्यक् शिक्षा का मिलना अनिवार्य होता है। यही कारण है कि एक पंडित का लड़का भी मूर्ख निकल जाता है तथा मूर्ख का लड़का शिक्षा के बल पर महापंडित तक हो जाता है। कारण यह है कि जन्मकाल में सभी बालक एकसमान होते हैं। सुधरने तथा बिगड़ने का श्रेय शिक्षा पर ही होता है।

इस नियम से एक बहुत बड़ा लाभ है। जहाँ यह बात सत्य है कि किसी बालक का पिता जो पंडित, कसरती वा गायक हो जायगा वहाँ यह भी सत्य है कि किसी दुराचारी पिता का पुत्र स्वभाव से ही दुराचारी नहीं होता। यदि किसी भी पीढ़ी के बालकों को उचित शिक्षा दी जाय तो हम उसके किसी भी दोष को दूर कर सकते हैं।

इस सिद्धान्त को समर्थन करने के लिये जर्मनी के "वाइसमैन" नामक मनोवैज्ञानिक ने अनेक प्रयोग किये जिनमें से एक उल्लेखनीय है।

वाइसमैन ने कुछ चूहों को पाले और उनकी पूछें काट डालीं। जब इन पूँछ कटे चूहों के बच्चे पैदा हुये तो देखा गया कि सभी को पूँछ है। इस प्रकार वे बीस पच्चीस पीढ़ियों तक चूहों की पूछें काटते रहे परन्तु प्रत्येक पीढ़ी के चूहों को वैसी ही पूँछ हो जाती थी जैसा कि पहले पीढ़ी में था। यों समझिये कि चूहों में अपने माता-पिता की कमी पैतृक सम्पत्ति रूप में नहीं आती थी। प्रत्येक चूहा माता-पिता के उसी गुण को लेता था जो उसे अपने पूर्वजों से मिला हुआ था। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि लंगड़े, लूले और काने माता-पिता का लड़का, लूला और काना नहीं होता। अतः सिद्ध हुआ कि वंशानुक्रम के आधार पर हम अपने प्रथम पूर्वजों के गुणों को ही प्राप्त करते हैं।

वंशानुक्रम का दूसरा नियम "भेद की उत्पत्ति (The law of variation) है। यहाँ यह बात सत्य है कि माता-पिता के

अनुसार ही उनकी संतान होती है। वहाँ यह बात भी हम देखते हैं कि किसी जाति के पुराने प्राणी में कुछ काल के बाद परिवर्त्तन हो जाता है। इस परिवर्त्तन का कारण क्या है इस पर मतभेद है।

डार्विन के अनुसार ये परिवर्त्तन आकस्मिक होते हैं और वंश परम्परा के नियमानुसार किसी भी जाति के प्राणियों में स्थिर हो जाते हैं। लेमार्क के सिद्धांत से इन परिवर्त्तनों का कारण उस प्राणी की आंतरिक इच्छा है। किसी भी प्राणी को जब किसी नव-वातावरण में पड़ जाने पर किसी विशेष प्रकार के परिवर्त्तन की आवश्यकता होती है तो उस प्राणी में वैसा परिवर्त्तन स्वतः आ जाता है।

यह नियम, सूक्ष्मरूपेण देखने पर, पहले नियम से एक तरह से प्रतिकूल-सा है। मैकडूगल और पाउलो के प्रयोगों से जो यह सिद्ध होता है कि अर्जित गुणों का वितरण (Transmission of acquired traits) अवश्य ही उस जाति की संतति पर होता है।

मैकडूगल ने एक प्रयोग चूहों पर किया। कुछ चूहों को पानी की नाद में छोड़ दिया जाता था। इस नाद से निकल भागने के दो मार्ग थे। पहला मार्ग ऐसा था जिसे होकर जाने में अन्धेरा पड़ता था तथा दूसरे मार्ग से भागने पर प्रकाश मिलता था। चूहे एकाएक निकल कर प्रकाशपूर्ण मार्ग से ही भागते थे पर इस रास्ते से भागने पर बिजली का एक धक्का लगता था। अब दूसरी बार जब भागने का मौका मिले तो वे

इस रास्ते को छोड़ने की चेष्टा करते थे। इसमें देखा गया कि पहली पीढ़ी के चूहों ने १६५ बार भूल करने के बाद अंधेरे मार्ग से जाना तथा बिजली के धक्के से बचना सीखा। लेकिन अगली पीढ़ियों में भूलों की संख्या क्रमशः कम होती गई। यहाँतक कि तेईसवीं पीढ़ी में सिर्फ पचीस बार भूल की।

पाडलो ने भी कुछ सफेद चूहों के ऊपर प्रयोग किया। इन चूहों को भोजन के लिये बिजली की घंटी द्वारा बुलाना सिखाया जाता था। इसको सीखने के लिये पहली पीढ़ी के चूहों के लिये तीन सौ बार, दूसरी पीढ़ी के चूहों के लिये सौ बार, तीसरी पीढ़ी के चूहों के लिये केवल पाँच बार घंटी बजाने की आवश्यकता पड़ी।

उपर्युक्त प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि माता-पिता के अर्जित गुणों का प्रभाव बच्चे पर आवश्यक रूप से पड़ता है। जिस कार्य को माता-पिता बड़ी कठिनाई से सीखे हुये थे उसी काम को उनकी सन्तान बड़ी सरलता के साथ सीख लेती है। यही कारण है कि ब्राह्मण के लड़के में पढ़ने-लिखने की रुचि बनी रहती है तथा क्षत्रिय के बालक में लड़ने में कुशलता देखी जाती है।

वंशानुक्रम का तीसरा नियम है शुद्ध जाति की अमरता। प्रकृति वर्णशङ्करों की उन्नति नहीं चाहती। जब कभी वातावरण के कारण कोई वर्णशङ्कर जाति पैदा हो जाती है तब धीरे-धीरे इस वर्णशङ्कर जाति का लोप हो जाता है। इस नियम को मैण्डल महाशय ने निकाला है। अतएव इस नियम का "मैण्डलवाद" नाम पड़ गया है (मैण्डलिज्म)। इस नियम का प्रतिपादन करनेके लिये उन्होने मटर के बीजों पर इसका प्रयोग किया।

उन्होंने दो प्रकार की मटर को एक जगह बोकर, एक नई जाति की मटर जो कि वर्णशंकर थी, उत्पन्न किया। फिर इस नई मटर को बोया। उससे उत्पन्न मटर को देखने से पता चला कि उनमें से आधे बीज शुद्ध मटर के थे तथा आधे वर्णशंकर थे। इन बीजों को बार-बार बोने से क्रमशः वर्णशंकरों की संख्या कम होती गई। इसको अच्छी तरह समझने के लिये उन मटरों की वंशावली बना लेना श्रेयस्कर होगा।
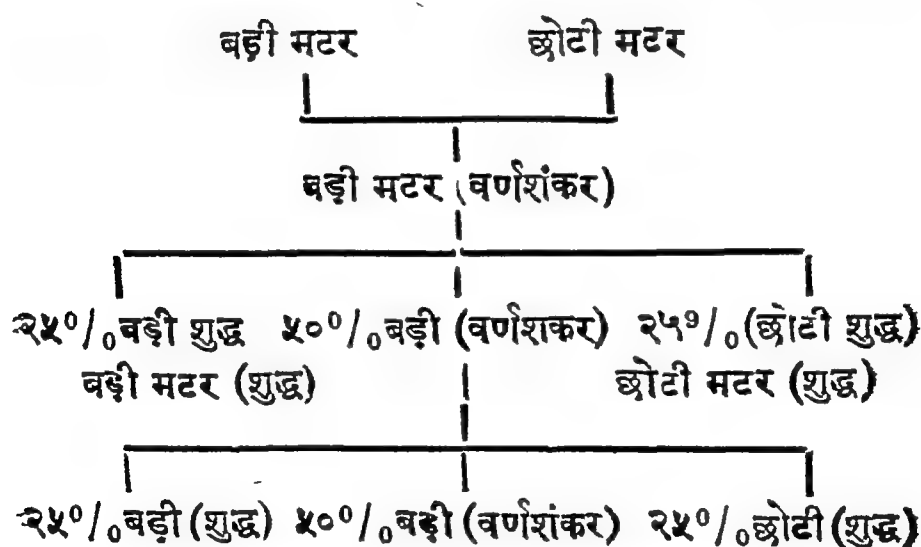
उपर्युक्त वंशावली से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह वर्णशंकरों के बार-बार बोने से उनकी संख्या धीरे-धीरे कम होती जाती है।

अब वंशानुक्रम (Heredity) के सिद्धान्त (Principles) पर प्रकाश डालने के बाद यह व्यक्त करना अप्रासंगिक न होगा कि बच्चों को वंशानुक्रम के नियमानुसार अपने पूर्वजों से जितने

गुण प्राप्त होते हैं उतने ही गुण उसे सामाजिक सम्पत्ति के रूप में अपने वातावरण से प्राप्त होते हैं। इसलिये इन नियमों को जानकर बालक का लालन-पालन अच्छी तरह कर सकते हैं।

Q. 11.—To what extent is 'human nature' inborn? How much is it modified by the environment?

'मानव स्वभाव (human nature) किस परिणाम तक जन्मजात (inborn) होता है' को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्राचीन काल में लोगों का दृष्टि-कोण था कि मनुष्य या अन्य जीव सभी गुण अपने वंशानुक्रम (heredity) से प्राप्त करते हैं। वे लोग मनुष्य के शील-गुण में (traits) वातावरण (environment) का कुछ भी स्थान नहीं देते थे। इस पक्ष को प्रामाणिक बनाने के लिये कितने पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के द्वारा कई एक प्रयोग वंशानुक्रम संबंधी किये गये हैं। किन्तु कुछ ही दिन बाद लोगों की आँखें खुलीं और लोगों ने देखा कि एक वंश में दो बच्चों के उत्पन्न होने पर भी वातावरण की भिन्नता के कारण उनके शील, गुण तथा अन्य व्यवहारों में अन्तर पड़ जाते हैं। अब क्या था, लोगों का ध्यान वातावरण सम्बन्धी प्रयोगों की ओर आकृष्ट हुआ और विभिन्न देशों में मनोवैज्ञानिकों के द्वारा वातावरण का प्रभाव देखने के लिये प्रयोग (experiments) होने लगे। अन्ततोगत्वा वर्त्तमान काल में लोग इस निर्णय पर पहुँच गये हैं कि मनुष्य के सभी शील-गुण जन्मजात ही नहीं होते बल्कि

अर्जित भी होते हैं और जो जन्मजात होते हैं उनमें भी वातावरण के सम्पर्क के कारण समाज के अनुरूप परिवर्त्तन आ जाता है। अब हमें यही देखना है कि मनुष्य-स्वभाव (human nature) किस अंश तक अर्जित होता है तथा वातावरण के कारण उसमें कितना परिवर्त्तन होता है।

अब मनुष्य के जन्मजात स्वभाव पर प्रकाश डालने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में दो प्रधान सिद्धान्त (theories) हैं; मूल प्रवृत्त्यात्मक सिद्धान्त (instinctive theory) और सहज क्रियात्मक सिद्धान्त (reflex theory)।

मूल प्रवृत्त्यात्मक सिद्धान्त (instinct theory) के अनुसार जब बच्चा जन्म लेता है तो उस समय उसमें कुछ क्रियाओं की प्रवृत्ति (tendency) रहती है और इसके अतिरिक्त उसमें कुछ नहीं रहता। ये ही प्रवृत्तियाँ आगे चलकर बच्चे के विभिन्न व्यवहारों तथा शील-गुणों का रूप साधारण कर लेती हैं। इनमें समाज के अनुरूप कुछ परिवर्त्तन भी होता है लेकिन सभी प्रकार के शील-गुणों की आधार-शिला मूलप्रवृत्ति है। एक मनोवैज्ञानिक ने तो मूलप्रवृत्तियों की संख्या व्यवहारों के प्रकार की संख्या पर ही निर्धारित करने का प्रयास किया है। हाँ, यहाँ मूलप्रवृत्ति से उसी क्रियात्मक वृत्ति से बोध करना चाहिये जो एक जाति के सभी जीवों में पाई जाती है। लेकिन यह सिद्धांत ठीक नहीं है क्योंकि बहुत-सी मूलप्रवृत्तियाँ जैसे, सहानुभूति इत्यादि मनुष्य जीवन में बहुत दिनों के बाद आविर्भूत होती हैं

और बहुत-सी काल-क्रम में विलीन हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें और भी कई दोष हैं जिनपर यहाँ स्थानाभाव से प्रकाश डालना असम्भव है।

जन्मजात मानव-स्वभाव (innate human nature) के सम्बन्ध में दूसरा सिद्धान्त सहज क्रियाओं का है जिसके अनुसार मनुष्य में जन्मजात गुण सहज क्रियाओं के ही होते हैं। यह सिद्धान्त जन्मकाल के समय उपस्थित कार्य-शक्तियों पर ही आधारित है। इस सिद्धान्त के पृष्ठपोषकों का कहना है कि मनुष्य के सभी शील, गुण और व्यवहारों के आधार (reflexes) ही हैं। परन्तु यह सिद्धान्त भी सर्वांश प्रतिपन्न नहीं है यद्यपि इससे बाल-स्वभाव के अध्ययन में बहुत मदद मिली है।

यदि हम इन सिद्धान्तों के विवेचन के पचड़े में न पड़ कर मानव जाति के जन्मजात स्वभाव पर निष्पक्षतया विचार करें तो हमें मालूम होगा कि मनुष्य के रूप-रंग (physique) बुद्धि (intelligence), धातु-स्वभाव (temperament), सहज क्रिया (reflexes) मूलप्रवृत्ति instincts) तथा अन्य शील-गुण (traits) जन्म-जात (inborn) होते हैं।

प्राय: ऐसा देखने में आता है कि बच्चे रूप-रंग (physique) में अपने माँ बाप के समान होते हैं। कभी-कभी बच्चे दादा-दादी के रूप-रंग को परिग्रहण (inherit) करते हुए भी पाये गये हैं। जिस बच्चे के माता-पिता लम्बे शरीर के, और सुगठित होते हैं उस बच्चे का शरीर भी लम्बा और सुगठित होता है। यदि माता पिता के शरीर का रूप-रंग (complex)

काला होता है तो बच्चा भी प्रायः उसी रंग का होता है और यदि माता-पिता गौरवर्ण के होते हैं तो बच्चा भी गौरवर्ण का ही होता है। इसके उदाहरण की कमी नहीं, क्योंकि हम इसका अनुभव नित्य-प्रति अपने जीवन में करते हैं। अँगरेज जाति के लड़के-लड़कियाँ रंग में उन्हीं जैसे होते हैं और हब्शी जाति के लड़के हब्शी-सा ही होते हैं। उनके रूप रंग मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता—इस रूप-रंग पर वातावरण का असर कुछ अंश में तत्काल देखने में आता है। क्योंकि अँगरेज कहीं भी जाने पर उसी रंग के बने रहते हैं। हाँ, गर्म देशों में आने पर कुछ उनका रग लाल अवश्य हो जाता है। अँगरेज के जो बच्चे भारतवर्ष में उत्पन्न होते हैं वे रूप-रंग में अपने माता-पिता से मिलते हुए भी कुछ भिन्न रहते हैं। यह भिन्नता वातावरण के ही प्रभाव स्वरूप देखने में आती है।

मनुष्य बुद्धि या मनीषा (Intelligence) भी वंशानुक्रम (Heredity) से ही प्राप्त करता है। प्रयोग करके देखने पर पता चला है कि बुद्धिमान् माता-पिता के लड़के बुद्धिमान् और मन्द बुद्धिवाले माता-पिता के लड़के मन्द बुद्धि के ही होते हैं। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों ने कई बुद्धिमान् परिवारों पर प्रयोग किया है। लेकिन देखने में यही आता है कि बच्चा कितना भी बुद्धिमान् माता पिता से क्यों न उत्पन्न हो परन्तु यदि उसका वातावरण अवांछनीय (Improper) हो जाता है तो उसकी मनीषा में भी कमी पड़ जाती है क्योंकि समुचित वातावरण न मिलने के कारण उसकी बुद्धि का विकास समुचित

रूप से नहीं होता। इसी प्रकार एक मन्द बुद्धि के बच्चे को यदि अच्छे वातावरण में रख दिया जाता है कुछ ही दिनों में उसकी बुद्धि उपलब्धि (I. Q.) में १० से ५ प्रतिशत की विवृद्धि हो जाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि बुद्धि यद्यपि मनुष्य में जन्मजात होती है लेकिन उसका विकास पूर्णतः वातावरण (Environment) पर निर्भर करता है।

धातु स्वभाव (Temperament) को भी हम जन्मजात ही कह सकते हैं क्योंकि यद्यपि यह कई ग्रंथियों (Glands) पर निर्भर करता है तथापि मनुष्य का स्वभाव उसके परिवार अथवा वंशानुक्रम के ही अनुरूप होता है। हाँ, इसमें संशोधन भी वातावरण के अनुसार अवश्य होता है। इसके उदाहरण की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि खोजने पर इसके अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं।

रुचि (Interest) भी कुछ अंश में जन्मजात होती है क्योंकि प्रायः यह देखने में आता है कि जिस बच्चे के माता-पिता संगीत के प्रेमी होते हैं वह बच्चा भी संगीत में रुचि रखता है या जो माता-पिता उपचार में रुचि रखते हैं वह बच्चा भी दवा-दारू में रुचि रखता है। इसी प्रकार लोहार का लड़का लोहे और बढ़ई का लड़का लकड़ी के काम में रुचि रखता है। परन्तु यदि इन बच्चों का वातावरण पूर्णतः बदल दिया जाता है तो धीरे-धीरे इन रुचियों का भी नामोनिशान मिट जाता है।

हमारी सहज क्रियाएँ (Reflexes) भी जन्मजात ही होती हैं लेकिन वातावरण से इनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं पड़ता। हाँ, जन्म के बाद कुछ स्वतः नष्ट हो जाती हैं।

इसी प्रकार मूलप्रवृत्तियाँ भी जन्मजात ही होती हैं जिन्हें हम अपने जन्मकाल से ही धारण करते हैं—हाँ, कुछ मूल प्रवृत्तियों का आविर्भाव प्रारंभ में होता है और कुछ का बाद में। इन सभी मूलप्रवृत्तियों में समयानुसार परिवर्त्तन हो जाता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज-विहित व्यवहारों को ही करता है। इसलिये इन मूलप्रवृत्तियों में समाज के अनुरूप परिवर्त्तन हो जाता है। काम की प्रवृत्ति को हमलोग प्रेम तथा स्नेह के द्वारा प्रकाशित करते हैं, लड़ने की प्रवृत्ति को वादविवाद के रूप में प्रकाशित करते हैं और माता की प्रवृत्ति को गुड़ियों को खेलाने में परिवर्तित पाते हैं। इस प्रकार मनुष्य की सभी मूल प्रवृत्तियों में समाज के अनुसार परिवर्त्तन हो जाता है।

अन्त में यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि हमलोग अपने माता-पिता से अन्य शीलगुण (Traits) भी प्राप्त करते हैं जिनमें वातावरण के कारण अत्यधिक संशोधन (Modification) हो जाता है। यदि उचित वातावरण रहता है तो उसका समुचित रूप से विकास होता है अन्यथा नहीं।

Chapter 3

MATURATION AND DEVELOPMENT
(परिपक्वता तथा विकास)

Q. 12.—What is maturation ? Explain and illustrate the influence of maturation on children's behaviour.

परिपक्वता को समझने के लिये ध्यान में रखना जरूरी है कि परिपक्वता (Maturation) प्राणी (Organism) की स्वाभाविक (Spontaneous) उन्नति (Growth) है। कहने का अभिप्राय यह है कि शरीर रचना के आन्तरिक परिवर्द्धन को परिपक्वता कहते हैं। यह जीव (Organism) के रासायनिक (Chemical) परिवर्त्तन (Change) के कारण होता है। परिपक्वता, विकास (Development) की वह प्रक्रिया (Process) है जो व्यक्ति (Individual) की जन्मजात (Innate) विशेषताओं (Characteristics) के कारण होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जीव में परिपक्वता आन्तरिक रूप से आती है और इसके कारण उन्हीं गुणों का विकास होता है जो जीव में जातीय (Racial) होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिपक्वता के कारण जो आन्तरिक उत्कर्ष होता है वह जातीय होता है जैसे, काम सभी प्राणियों में पाया जाता है। अतएव परिपक्वता से काम (Sex) की ही विवृद्धि हो सकती है। इस प्रकार से अन्य जातीय विशेषताओं में भी परिपक्वता के कारण विवृद्धि (Development) होती है।

अब परिपक्वता (Maturation) का प्रभाव बच्चों के व्यवहार पर प्रदर्शित करने के लिये यह व्यक्त कर देना अनिवार्य है कि पहले लोगों का विश्वास था कि जन्म के पहले बच्चे में जो विवृद्धि होती है वह परिपक्वता के कारण होती है और बाद में जो विवृद्धि होती है वह शिक्षण (Learning) के कारण होती है। लेकिन वर्त्तमान युग के प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि सभी प्रकार की शिक्षण प्रक्रियाएँ (Lear ning process) परिपक्वता (Maturation) पर ही निर्भर करती है।

परिपक्वता का बच्चे के व्यवहार विकास (Behavioural-Development) पर क्या प्र भाव पड़ता है को व्यक्त करने के लिये यहाँ दो एक प्रमुख प्रयोगों पर प्रकाश डालना अनिवार्य है।

गेसेल और थाम्पसन (Gesell and Thompson) ने परिपक्वता का प्रभाव देखने के लिये दो जुड़वे बच्चों पर प्रयोग किया। उनमें से एक बच्चे को जो ४६ सप्ताह का था ६ सप्ताह तक सीढ़ी कूदने का ढंग सिखलाया गया और दूसरा ५३ सप्ताह तक इस शिक्षा से वंचित रखा गया। जिस बच्चे को शिक्षा दी गई थी वह ५२ सप्ताह के अन्त में सीढ़ी कूदने में २६ सेकेण्ड लिया। लेकिन दूसरा बच्चा जिसे कूदने की शिक्षा नहीं मिली थी ५३ वें सप्ताह में उसी सीढ़ी को कूदने में ४६ सेकेण्ड लिया। फिर जब इसे दो सप्ताह की शिक्षा के बाद वह सीढ़ी कुदाया गया तो सिर्फ १० सेकेण्ड में ही कूद गया। इससे मालूम होता है कि बच्चे के बहुत से व्यवहारों का विकास स्वत; परिपक्वता के कारण होता है।

डेनिस (Dennis) के प्रयोगों से भी स्पष्ट है कि परिपक्वता के कारण बच्चों के बहुत से व्यवहारों का स्वतः क्रमिक (Gradual) विकास (Development) होता है। इस प्रकार अन्य प्रयोग भी इस बात के साक्षी हैं कि परिपक्वता से जातीय (Racial) विशेषताओं और व्यवहारों का स्वतः विकास होता है।

बच्चों के व्यवहार पर परिपक्वता के प्रभाव के लिये प्रश्न नम्बर १४ का उत्तर पढ़िये। उससे स्पष्ट हो जाएगा कि परिपक्वता के साथ-साथ विभिन्न व्यवहारों का क्योंकर आविर्भाव होता है।

Q. 13.—What is maturation? How would you distinguish it from learning? Show how they are inter-related in the development of the child.

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १२ का उत्तर पढ़िये।

परिपक्वता (Maturation) और शिक्षणशीलता (Learning) के अन्तरों को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना जरूरी है कि परिपक्वता, शरीर रचना की परिवृद्धि (Growth) है किंतु शिक्षणशीलता से प्रतिक्रिया (Response) की विवृद्धि होती है। उदाहरणार्थ पेशियों और स्नायुओं में विवृद्धि परिपक्वता के कारण होती है लेकिन दौड़ने, घोड़े पर चढ़ने आदि का कार्य सीखने के कारण होता है।

जब शरीर रचना में रासायनिक (Chemical) परिवर्त्तन होते हैं तो परिपक्वता होती है किंतु सीखने में रासायनिक परिवर्त्तन नहीं होते बल्कि वातावरण की परिस्थितियों में परिवर्त्तन होता है।

परिपक्वता व्यक्ति विशेष की जन्मजात विशेषताओं पर निर्भर करती है परन्तु सीखना व्यक्ति की अर्जित प्रक्रिया है।

परिपक्वता पर सीखना निर्भर करता है लेकिन सीखने पर परिपक्वता निर्भर नहीं करती।

सीखने में अभ्यास (Exercise) का विशेष हाथ रहता है लेकिन परिपक्वता के लिये अभ्यास की जरूरत नहीं पड़ती।

परिपक्वता से जातीय (Racial) विशेषताओं में विवृद्धि होती है लेकिन शिक्षण से व्यक्तिगत विशेषताओं और प्रतिक्रियाओं में विवृद्धि होती है। इसी प्रकार इन दोनों में और भी अन्तर दिखलाए जा सकते हैं लेकिन हम लोगों को इन दोनों को विभिन्न नहीं समझना चाहिये क्योंकि ये एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।

ये दोनों बच्चे के विकास में एक दूसरे के आश्रित क्योंकर रहते हैं इसके लिये प्रश्न नम्बर १४ का उत्तर पढ़िये।

Q. 14.—What is meant by maturation? Explain with examples the influence of maturation in the developments of the child's emotional responses.

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १२ का उत्तर पढ़िये।

बच्चे की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में (emotional responses) पर परिपक्वता (maturation) का प्रभाव (influence) व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि बच्चों की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि बच्चों में संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का आविर्भाव परिपक्वता (maturation) के कारण होता है कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बच्चों में संवेगों का आविर्भाव शिक्षण और अनुभव (learning and experience) के कारण होता है। यहाँ हमें इसी पर विचार करना है कि वस्तुतः संवेग में परिपक्वता का कहाँ तक हाथ रहता है।

गुड एनफ (Good enough) ने एक दसवर्षीया बालिका के विषय में यह व्यक्त किया है कि बालिका जन्मान्ध थी और बहरी भी। इसलिये उसे देखने और सुनने का किसी प्रकार का अनुभव (experience) नहीं हुआ तथापि वह बालिका इस अवस्था में क्रोध (anger) और आनन्द (joy) का संवेग प्रदर्शित करती थी। यहाँ यह विचारणीय है कि यदि संवेग का आविर्भाव अनुभव के कारण होता है तो उसका अनुभव उस जन्मान्ध बहरी-बालिका को कैसे हुआ। वह तो न किसी चीज को देख सकती थी और न किसी शब्द को ही सुनने में समर्थ थी। इसलिये ज्ञात होता है कि उसे इन संवेगों का अनुभव उसकी परिपक्वता के ही कारण हुआ। अर्थात् संवेगात्मक प्रतिक्रिया के कारण वाह्य अनुभव और अंग (factors)

नहीं है बल्कि इसमें आन्तरिक अंगों (factors) का ही हाथ रहता है।

अब यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि यदि कुछ संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ बिना अनुभव के ही आविर्भूत होती हैं तो वे कौन-सी परिस्थितियाँ (situations) या अवस्थाएँ (conditions) हैं जिनमें इनका आविर्भाव होता है ?

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि बहुत से पदार्थ या परिस्थितियाँ ऐसी हैं जो बच्चों के प्रारम्भिक जीवन में किसी प्रकार का संवेग नहीं उत्पन्न करती हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों बच्चे की अवस्था बढ़ती जाती है वे ही संवेग उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं। बच्चे बहुत छोटे रहते हैं तो उस समय वे साँप, बिच्छू या अन्धकार से नहीं डरते हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है वे उनसे डरने लगते हैं। वाटसन (Watson) का कहना है कि इन पदार्थों से बच्चे सम्बद्धता (conditioning) के कारण डरने लगते हैं। किन्तु जोन्स (Jones) और भेलेण्टाइन (Vallentine) का मत है कि वे इन चीजों से परिपक्वता (maturation) के कारण डरते हैं। इन लोगों ने १३ महीने के बच्चे से लेकर प्रौढ़ों (adults) तक की प्रतिक्रियाओं (reactions) का निरीक्षण (observation) किया है। ये बच्चे साँप को पकड़ने के लिये कहे गये। दो वर्ष तक के बच्चों ने किसी प्रकार का भय प्रदर्शित नहीं किया लेकिन ३। वर्ष के बच्चों ने साँपों के सामने कुछ चौकसी (precautions) दिखलाई। चार वर्ष के बच्चों ने भय का प्रदर्शन किया। अतएव इन लोगों

का कहना है वस्तु विशेष के प्रति किसी संवेग का आविर्भूत होना शारीरिक विकास (Physiological Development) पर निर्भर करता है। ज्यों-ज्यों बच्चे का विकास होता जाता है त्यों-त्यों उसमें संवेगों का आविर्भाव होता जाता है। विकास शारीरिक ही नहीं होता बल्कि शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास (mental development) भी होता है। अतएव बच्चे में सूझ उत्पन्न हो जाती है और जब वह किसी खतरनाक पदार्थ वा परिस्थिति (situation) को देखता है तो वह भय (fear) का संवेग उत्पन्न करता है।

ब्लाट्ज (Blatz) और मिलिशैम्प (Millichamp) का कहना है कि बच्चों में संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं (emotional reactions) का अविर्भाव दो वर्षों तक क्रमशः (regular) होता है। बच्चों का चिल्लाना(crying) और बेचैनी (restlessness) की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का आभिर्भाव चार महीनों के अन्तर्गत ही हो जाता है। शारीरिक प्रतिरोध (physical resistence) की प्रतिक्रिया एक वर्ष में होने लगती है। दूसरे वर्ष में चीजों का फेंकना, मुँह छिपाना और क्रुद्ध होकर नहीं कहना, होने लगता है। तीन वर्ष के प्रारम्भ में संवेग की अवस्था में कुछ अनाप-सनाप (verbalisations) भी बोलने लगते हैं। कुछ ऐसी भी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का एक निश्चित अवस्था में आविर्भाव होता है जो पुनः कुछ दिनों बाद कम हो जाती हैं।

जब बच्चों में शारीरिक (motor) और मानसिक विकास हो जाता है तब उनमें संवेग सम्बन्धी अन्य प्रतिक्रियाओं का

भी आविर्भाव होने लगता है, उदाहरण के लिये चीजों का इधर-उधर फेंकना, दौड़ना या अनाप-सनाप बोलना। यद्यपि ये प्रतिक्रियाएँ स्वयं संवेगात्मक नहीं होतीं लेकिन इनका सम्बन्ध किसी-न-किसी संवेग से अवश्य ही प्रस्थापित हो जाता है।

यहाँ पर भी स्मरणीय है कि अवस्था (age) की विवृद्धि के साथ-साथ बहुत सी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं मे न्यूनता भी हो जाती है। कारण की बच्चे की उमर ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसके वातावरण (environment) में अभियोजन (adjust) करने की योग्यता बढ़ती जाती है। अब उसकी योग्यता बढ़ जाती है तो वह किसी विकट परिस्थिति का अतिक्रमण करने में आसानी से समर्थ होता है। इसलिये संवेगों में कमी पड़ जाती है।

अब तक हम इस बात पर विचार करते रहे हैं कि परिपक्वता (maturation) का प्रभाव (influence) बच्चों के संवेगात्मक विकास पर क्योंकर पड़ता है। लेकिन यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि बच्चे का कोई भी व्यवहार अकेले परिपक्वता पर ही निर्भर नहीं करता उसमें सम्बद्धता (conditioning) का भी कम हाथ नहीं रहता। जब बच्चा साँप, बिच्छू आदि के मतलब को समझ जाता है तभी उनके प्रति संवेगात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसलिये हम परिपक्वता के महत्त्व को मानते हुए भी सम्बद्धता की उपेक्षा नहीं कर सकते। ये दोनों अन्योन्याश्रयी (interdependent) हैं।

Q. 15.—What is maturation ? Give examples.

Write a short note on the mental equipment of the new born infant

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १२ का उत्तर पढ़िये।

नवजात शिशु (New born infant) की मानसिक योग्यता (Mental equipment) का वर्णन करने के लिये इस बात पर प्रकाश डालना आवश्यक है कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उस समय उसमें विशिष्ट (Specific) क्रिया देखने में नहीं आती है। परन्तु उसमें बहुत सी जटिल (Complex) सहजक्रियाओं के प्रकाशन की योग्यता विद्यमान रहती है। उसका समूचा शरीर किसी परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करता है। फिर क्रमशः वह व्यवहार सामान्य (General) से विशिष्ट रूप में परिणत हो जाता है।

जब बच्चा जन्म लेता है तो उसमें सबसे पहले साँस (Breathing) की योग्यता (Capacity) विद्यमान रहती है। जन्म लेते समय जो बच्चा क्रन्दन (Cry) करता है उसी क्रन्दन के द्वारा वह स्वच्छ हवा अपने अन्दर लेता है। जन्म के बाद वह छींकता भी है परन्तु जन्म से पाँच सेकेण्ड के बाद वह जम्हाई लेता या मुँह खोलता है। एक सप्ताह में उसमें हिचकी की भी योग्यता आ जाती है। क्रन्दन तो जन्म के बाद होता ही है। वह अपने मस्तक को भी इधर से उधर घुमाता है। दूध चूसने, साँस लेने तथा सोने की क्रियाएँ जन्म के बाद ही प्रारंभ हो जाती है। ये क्रियाएँ बच्चे के जीवन के लिये बहुत

ही आवश्यक होती हैं। किसी चीज को पकड़ने की सहज क्रिया (Reflex) भी उसमें विद्यमान रहती है। जन्म के बाद उसमें (Babinski reflex) भी देखने में आता है।

बच्चों में ३० घण्टे बाद प्रकाश की प्रतिक्रिया करने की भी योग्यता हो जाती है और कुछ ही हफ्ते में घूमते हुए पदार्थ को आँखें घुमाकर देखने लगता है। शब्द सुनने की योग्यता कुछ ही समय बाद हो जाती है। स्वाद, गंध और ताप के प्रति भी बच्चे में प्रतिक्रियाएँ देखी जाती हैं। इनसे यह नहीं समझना चाहिये कि बच्चों में सिर्फ सहज क्रियाओं की ही योग्यता विद्यमान रहती है क्योंकि इन्हीं प्रतिक्रियाओं के द्वारा बच्चे अपने को अभियोजित करते हैं। संक्षेप रूप में हम इन्हीं क्रियाओं को बच्चे की मानसिक योग्यता के अन्तर्गत रख सकते हैं।

Q. 16.—Explain the role of Maturation in emotional development.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १४ का उत्तर पढ़िये।

Chapter 4

SENSORY AND MOTOR DEVELOPMENT

(ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक विकास)

Q. 17.—Give a brief account of the sensory-motor developments of t e child in the first year of life.

बालकों के संवेदनात्मक (Sensory) विकास पर पूर्ण-रूपेण प्रकाश डालने के पहले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि मनुष्य की सारी भावनायें (Ideas) संवेदना-जन्य हैं। "लाक" (Locke) महोदय का कहना है कि संवेदना के पहले (Prior to sensation) किसी भावना की उत्पत्ति नहीं होती। लेकिन यहाँ पर हमारा मतलब सिर्फ बालकों की संवेदनाओं से रहेगा। अब हम उनके एक-एक संवेदनात्मक अथवा ज्ञानात्मक पहलू पर प्रकाश डालेंगे।

जन्म पश्चात् बालक में सर्वप्रथम दृष्टि संवेदना (Visual sensation) होती है, कारण, इस समय उसकी आँखों में वाह्यांश सम्बन्धी (Peripheral) यंत्र (Mechanism) बना रहता है अतः रोशनी एवं अन्धेरे में उसे भिन्नता मालूम होने लगती है किन्तु अनुभव के अभाव में वह किसी चीज को देख नहीं सकता।

आँख से उसे सर्वप्रथम वाह्य-विश्व में रोशनी (Light) का अनुभव ही होता है। स्वभावतः बच्चों की आँखें रोशनी पर लग जाती हैं। यह संवेदना जन्म के बाद ही हो जाती है। Locke says, "As the soul thursts for ideas so the child thursts for light"? इस समय बच्चा रोशनी का अनुभव (feel) करता है, समझ नहीं सकता। प्रेयर का लड़का साधारण रोशनी (moderate light) पर आनन्द का अनुभव किया, कड़ी रोशनी में तकलीफ (Pain) तथा अन्धेरे में बहुत कम खुशी का अनुभव किया। पहले दिन ही रोशनी में कमी आने पर मुखाकृति

बदल गई थी तथा ग्यारहवें दिन रोशनी को हटा लेने पर रोने लगा था। अधिक कड़ी रोशनी से सोने पर भी तकलीफ होती थी उस समय बच्चा पपनी (eyelids) चलाने लगता है, सहसा अशान्त होकर जग जाता है। Preyer प्रेयर महोदय ने अपने बच्चे को जगने पर कड़ी रोशनी उसके नजदीक दिखलाया तो देखा कि लड़के ने अपनी आँखें बन्द करलीं तथा सिर घुमा लिया। रेहलमान (Raehalmann) का कहना है कि रोशनी में उनकी पुतलियाँ बढ़ जाती हैं तथा अंधेरे में घट जाती हैं। बालकों में रेटिना तथा पुतलियाँ तो जन्म के समय रहती हैं किन्तु मस्तिष्क विकसित नहीं रहता अतः बाह्य-विश्व के पदार्थों को नहीं देख पाते। क्योंकि इस कार्य के लिये अनुभव की आवश्यकता अधिक होती है। विटकास्की (Witkowski) के मुताबिक इस समय बच्चों में आँख की गति ठीक नहीं होती, कभी तो दोनों साथ ही घूमती हैं तो कभी एक ही घूमती है तथा दूसरी जस का तस रहती है। तीसरे महीने के बाद इस गति में कमी आने लगती है। अब बच्चे आकस्मिक सबल उत्तेजना (रोशनी) पर नजर देते हैं पर सीधे नहीं टेढ़े (vertically)। धीरे-धीरे बच्चे में दृष्टि-स्थिरता (fixation) आने लगती है तथा बच्चा सीधे किसी वस्तु (object पर ध्यान देने लायक हो जाता है। प्रेयर महोदय बच्चों के देखने (seeing) को चार भागों में बाँटते हैं। अब हम उनपर संक्षिप्ततः विचार करेंगे। पहली अवस्था में बच्चा संवेदना का अनुभव करता है पर उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। इस समय वह किसी

वस्तु पर ध्यान स्थिर नहीं कर सकता, कारण, उसके स्नायु, जिससे आँखें एवं सिर घूमते हैं, उस पर नियंत्रण नहीं रहता। इस समय वह वस्तुत: रिक्त (empty) स्थान की ओर ताकता (stare) है। नौ दिन के अन्तर्गत सम्भवतः उसकी आँखें स्थिर नहीं होतीं। दूसरी अवस्था में बच्चा चमकीले (bright) पदार्थ की ओर देखने (gaze) लगता है। साधारणतः बड़ा (large) वस्तु उसके प्रतीति क्षेत्र में आता है। ग्यारह दिन की अवस्था में एक लड़के को ऐसा पाया गया तथा दूसरे को चौदह दिन पर। परेज (Perez) महोदय का कहना है कि एक लड़का एक महीने के अन्त में एक चमकते हुए दीपक पर तीन-चार मिनट तक ताकता रहा। साधारणतः हम इतना कह सकते हैं कि चार-पाँच हफ्ते की उम्र में बच्चा किसी वस्तु पर दृष्टि डालने (focuses his eyes) लगता है। तीसरी अवस्था में बालक में चलती-फिरती चमकीली चीज (object) को पीछा (follow)करने की शक्ति आ जाती है। एक लड़के को, दूसरे सप्ताह में रोशनी का पीछा करते पाया गया, दूसरे में तेईसवें रोज यह प्रतिक्रिया देखी गई। किन्तु पाँच से छः सप्ताह के अन्दर ऐसी प्रतिक्रिया रोशनी के प्रति प्रायः देखी जाती है। "रेहनम" के मुताबिक पाँच सप्ताह के पहले यह प्रतिक्रिया नहीं होती। लेकिन कालमन (Kolman) ने एक आठ वर्ष की लड़की को देखा कि अभी उसकी दृष्टि अशांत (restless) थी, निश्चित रूप से वस्तु (object) पर स्थिरता नहीं आई थी। चौथी अवस्था में बच्चा केवल देखना ही नहीं वरन् समझने की कोशिश भी

करता है। इस समय उसमें किसी निश्चित दिशा की ओर अपना ध्यान लगाने की क्षमता आ जाती है। साधारणतः तीन से पाँच महीने तक यह क्षमता आती है। एक दश हफ्ते की लड़की को, उसे पुकारने पर उसी ओर अपनी आँख फेरते पाया गया। एक बालक छः हफ्ते की उम्र में किसी निश्चित दिशा की ओर देखते पाया गया। इसी तरह, एक बारह हफ्ते का लड़का आवाज सुनकर उसी तरफ अपनी नजर फेरा तथा कुछ देर बाद उस आदमी को देखकर स्थिर हो गया। चौदह हफ्ते की उम्र में, घड़ी के pendulam पर अपना दृष्टि डाला। लेकिन अभी उसके देखने में गति न आई थी। उनतीसवें हफ्ते में जाकर लड़का उड़ती चिड़िया को देख पाया तथा पाँच महीने की उम्र में वह उस चिड़िया को निश्चित रूप से (definitely) देख सका। अतः उसके दृष्टियन्त्र (mechanism of the eye) पर ऐच्छिक नियन्त्रण (control) हो गया था। धीरे-धीरे वह वाह्य विश्व के पदार्थ को समझने भी लगा। इस समय बच्चा केवल वस्तु पर ताकता (stare) नहीं था वरन् मनुष्य के नाते देखता था (He is now bonafied, seeing human being.)

नवजात शिशु अपने से दूर किसी वस्तु को नहीं देख सकता। यदि देखता भी है तो उसका असर उसके retina पर नहीं पड़ता है। एक महीने पाँच दिन की अवस्था में टायडमेन का लड़का (Tiedemann's son) अपने से दूर स्थित वस्तु में भिन्नता (distinction) समझ पाया तथा उसे लेने को हाथ

फैलाया। किसी किसी लड़के में पाँच महीने की उम्र में ऐसा करते पाया गया। हाँ, इतना अवश्य है कि यह विकास बहुत धीरे-धीरे होता है। पहले बच्चा रंगीन (coloured) स्थान (space) को ही देखता है। पीछे वह रंग की भिन्नता (colour discrimination) समझ पाता है। जन्म के तीन चार दिन पहले वह रंग-भेद सम्भवतः नहीं समझ पाता किन्तु रोशनी (light) और अँधेरा (darkness) समझता है। रंग-भेद का ज्ञान भी शनैः-शनैः (slowly) होता है। ग्रांट एलेन (Grant Allen) ने दो वर्ष के बच्चों को अंगूर, नारंगी आदि का नाम कहते पाया था। वे इस रंग-को नहीं समझते थे। एक दश दिन की लड़की अपनी माँ के पोशाक को देखकर खुश हो गई थी। एक तेईस रोज का लड़का चमकीले कपड़े को देखकर खुश था। दूसरा लड़का दो महीने की अवस्था में चमकीला एवं सादा कपड़ा में भेद समझ सका तथा पहले को देखकर खुश हो गया। एक चार महीने का लड़का उजले रंग से संतुष्ट (Pleased) हो गया पर लाल रंग देखकर बहुत खुश हुआ। आगे चलकर अभ्यास की कमी से बच्चों में colour blindness हो जाता है। चार पाँच वर्ष की उम्र में इस तरह के चार प्रतिशत लड़के पाये गये किन्तु लड़कियों में बहुत कम को ऐसा होता है। इस तरह इन बालकों की दृष्टि-संवेदना के विकास को अच्छी तरह समझ लेने के बाद अब उसकी श्रवण संवेदना (hearing) पर विचार करेंगे।

बच्चों के इस ज्ञान (sense) को समझने के लिये हमें यह

कह देना आवश्यक है कि इसी के आधार हम दुनियाँ के किसी विषय को जान पाते हैं। यह knowledge giving sense है। जब हम बच्चों की इस शक्ति को देखना चाहते हैं तो हमारा ध्यान उन पर किये गये प्रयोगों की ओर आकृष्ट होता है। बच्चे में जन्मकाल में सुनने की (hearing) शक्ति रहती है अथवा नहीं इस पर विभिन्न मत हैं। टालबोट महोदय का कहना है कि तीन घण्टे की उम्र में एक बच्चा इन्द्रिय ग्राह्य (sensible) था। सिगिसमड के मुताबिक एक सप्ताह में यह ज्ञान पाया गया। कुरजमाल महोदय के मुताबिक पहले रोज बच्चे पर किसी भी आवाज का चाहे वह कितना ही जोर का क्यों न हो, असर नहीं पड़ता। गजमर ने अपने प्रयोग में हर लड़के को प्रथम से लेकर दूसरे दिन तक आवाज का असर पड़ते देखा। डा० डेनेक ने छः घंटे के लड़के को किसी कर्णकटु आवाज को सुनकर आँख मूँदते हुए पाया। किन्तु प्रेयर महोदय ने यह प्रतिक्रिया तीन रोज के बच्चे में भी न पाई। इस तरह इस विषय पर मतैक्य नहीं है। किन्तु उन प्रयोगों के आधार पर हम उनके विषय में कुछ सोच सकते हैं।

जन्म के बाद बच्चा तुरत सुनकर चौंकता नहीं है। किन्तु उसके शरीर में आवाज सुनने पर एक कम्पन-सी आ जाती है और फलस्वरूप सारा शरीर काँप जाता है। हम इतना कह सकते हैं कि बच्चों म सुनने का समय एक ही नहीं वरन् विभिन्न है। जिस पर उसके स्वास्थ्य का असर पड़ता है। यदि कोई स्वस्थ

लड़का चार सप्ताह तक कुछ न बोले तो समझना चाहिये कि कहीं लड़का बहरा और गूँगा न हो जाय। इस समय बच्चे की कर्णेन्द्रिय सबल नहीं होती अतः वह किसी आवाज के स्थान को नहीं समझ सकता। एक लड़का चार महीने दस रोज की उम्र में किसी आवाज की ओर अपना ध्यान लगा सका। क्रमशः आयु वृद्धि के आधार पर उसकी इन्द्रिय सबल होती जाती है तथा बच्चा स्पष्टतः सुनने लगता है। यहाँ तक कि चार महीने की उम्र होते-होते बच्चा आवाज (sound) के अर्थ को अपनी बुद्धि के आधार पर समझने लगता है। प्रायः बच्चा जन्मकाल से ही गाना (music) की तरफ आकृष्ट होता है किन्तु सयाने होने से वह उसके लय (hormony) में अन्तर समझने लगता है। डा० ब्राउन ने एक साढ़े पाँच महीने के लड़के को देखा जो माता के चुप हो जाने पर रोने लगता था तथा गाने पर खुश हो जाता था। पिआनो बाजा की आवाज से तो वह गद्गद हो जाता था। लेकिन यह योग्यता सयाने होने पर न भी रह सकती है। यदि बच्चा बराबर इसी वातावरण में रहे, यानी संगीत के सम्पर्क में अधिक रहे तो वह कला उसे सदा के लिये रह भी सकती है।

बच्चों के ज्ञानात्मक विकास में तीसरा स्थान स्पर्श ज्ञान का होता है। किसी-किसी ने इसे विश्वजनीन-ज्ञान (universal) माना है। इसका सम्बन्ध शरीर के किसी भाग से होता है। हम अपने शरीर को जहाँ कहीं छूते हैं वहीं से मस्तिष्क में यह बात चली जाती है। अतः इसे मौलिक

(fundamental) ज्ञान भी कहा गया है। इसकी उपयोगिता बिलकुल स्पष्ट है। इसी ज्ञान पर हमारा मानसिक विकास निर्भर करता है। हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ अच्छी न हों पर यदि स्पर्श ज्ञान ठीक है तो किसी भी चीज को उसके स्पर्शमात्र से ही समझ जाते हैं।

जन्म के बाद बालकों के शरीर में नाना प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं। साधारणतः जो अंग बाह्यविश्व से प्रत्यक्ष रहता है वह तो कठोर हो जाता है; किंतु रक्षित अग, जैसे, जिह्वा (tongue) एव नेत्र (eyes) दोनों बड़े ही सवेदनशील (sensitive) होते हैं। कुसुमाल महोदय ने अपने प्रयोग में देखा कि जब कोई वस्तु बच्चे की जिह्वा के ऊपरी भाग में स्पर्श की गई तो वह तुरत उसे चूसना शुरू कर दिया। लेकिन जिह्वा के पिछले भाग में स्पर्श करने से कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई। छः दिन की अवस्था में जीभ में जरा-सा स्पर्श होने पर भी चूसने की प्रतिक्रिया पाई गई। किसी-किसी में पाँचवें एवं पहले दिन भी यह देखा गया। नाक में किसी वस्तु के प्रविष्ट करने पर बच्चों में छींक आ जाती थी। ऐसा सात महीने की उम्र में पाया गया। बच्चों के नेत्र भी स्पर्श ज्ञान में बहुत पक्के होते हैं। खासकर पपनी (lashes , पर ज्योंही हम साधारण चीजों से भी छूते हैं त्योंही वह बन्द हो जाती है। जब बच्चा सोया रहता है उस समय भी पपनी छूने के साथ ही सिकुड़ जाती है। इसके अलावे अंग के अन्य हिस्से जैसे, कर्मेन्द्रिय, हाथ, पॉव, कंधा, छाती, पीठ तथा जॉघ का अग्रभाग भी स्पर्श ज्ञान से पूर्ण होते

हैं पर इनका विकास पीछे चल कर होता है। यह विकास साधारणतः इन्द्रिय की सबलता एवं आयुवृद्धि पर निर्भर करता है।

स्वाद ज्ञान (taste sensation), सिगिसमंड के मुताबिक ज्ञान की पहली सीढ़ी है जिससे हम किसी वस्तु का प्रत्यक्ष कर पाते हैं। कई प्रयोगों से पता चला है कि बच्चे में जन्म के कुछ क्षण बाद ही रस ज्ञान (taste sense) वर्त्तमान रहता है। कुसुमाल महोदय ने बीस बच्चों पर ऐसा प्रयोग किया। उसने उनके मुँह में किनाइन एवं चीनी का रस (solution) अलग-अलग डाला। इस समय उन लड़कों की उम्र केवल एक रोज की थी। उसने देखा कि चीनी का रस पड़ने पर बच्चे मुँह बन्द कर लेते थे, जिह्वा सट जाती थी तथा वे उसे चूसने एवं निगलने लगते थे। लेकिन जब किनाइन दिया जाता था तो बच्चे आँखें बन्द कर लेते थे, मुँह खुल जाता था, लार बन कर गिरने लगता था तथा बच्चे उगलने की कोशिश करते थे। यहाँ इतना अवश्य याद रखना चाहिये कि प्रत्येक इन्द्रिय एक विशेष प्रकार का ज्ञान रखती है। हर इन्द्रिय से हर प्रकार का ज्ञान नहीं होता। पेरेज का कहना है कि बच्चे के रस ज्ञान में बालपन में बहुत कम वृद्धि होती है (taste sense)। एक बच्चे को दूध और पानी में स्वाद के आधार पर भेद करते पाया गया। एक छः महीने का बच्चा रंग बदल देने से ही कड़वी दवा ले लिया। इसका विकास बालकों में जल्दी से होता है पर उसके स्वास्थ्य एवं स्वभाव पर निर्भर करता है।

कितने लड़के, ऊफर (Ufer) महोदय ने देखा कि केवल गन्दा पानी एव साबुन वाला पानी पीते थे। एक नौ महीने की लड़की जो भले घर की थी, उसे कुत्ते की थाली से लेकर मछली चूसते पाया गया। चार-पाँच वर्ष के लड़के को खल्ली, मिट्टी आदि स्वादिष्ट मालूम होता है। किन्तु हाँ, इसमें परिवर्त्तन होता शिक्षा, अनुभव एवं आयु के आधार पर। गध ज्ञान एवं रस ज्ञान एक ही कोटि में हैं। प्रयोग से पता चला कि इस समय बच्चे कड़ी गंध की ही प्रतिक्रिया करते थे। इसका पता उनके भाव-भंगी से ही होता था। कड़ी गधवाली चीज नाक के नजदीक देने से बच्चा हाथ-पाँव फेकने लगता था, अशांत-सा हो जाता था, सिर हिलाने लगता था, चेहरा सिकुड़ जाना था तथा बच्चा जग जाता था और कभी-कभी रोने भी लगता था। उम्र की वृद्धि से इस ज्ञान की वृद्धि होती है, किन्तु धीरे-धीरे। सूक्ष्म गंध का ज्ञान तो काफी शिक्षा एवं अनुभव के बाद होता है। यह ज्ञान बच्चों में बहुत कम रहता है। यह ज्ञान मनुष्य की अपेक्षा जानवरों में अधिक पाया जाता है। मनुष्य को इससे केवल किसी चीज का ज्ञान होता है तथा बच्चे इसके आधार पर अपना भोज्य पदार्थ पहचानते हैं। इसकी वृद्धि में शिक्षा का स्थान अधिक है।

शीतोष्ण (thermal) संवेदना, बच्चे में बहुत जल्द विकसित होती है। जन्म के कुछ ही काल बाद वह ठंढ और गर्म को पहचानने लगता है। प्रेयर महोदय ने देखा कि पहले दिन (जन्म के) भी जब बच्चे को गर्म पानी से नहलाया गया तो उसे

अच्छा लगा तथा ठंढे पानी से तकलीफ हुई। अधिक गर्म दूध बच्चा नहीं पीता है किन्तु माँ का दूध पीता है। इसका विकास, अनुभव एवं शिक्षा पर ही निर्भर करता है।

अंत में, हम बालकों की अन्तरावयव संवेदना (organic sensation) पर विचार करेंगे। इसके अन्दर उनकी भूख, प्यास, पीड़ा आराम का ज्ञान आ जाता है। प्रेयर महोदय का कहना है कि भूख-प्यास का ज्ञान बालकों में जन्मकाल से ही रहता है। इसी भावना से प्रेरित होकर बच्चा रोने लगता है। जन्मकाल में बच्चा अधिक रोता कारण वह अधिक एक बार नहीं खा सकता। धीरे-धीरे उसका पेट बढ़ता जाता है और वह एक बार में अधिक खाना सीख जाता है। पाँच महीने की उम्र से उसे खाने में स्थिरता आती है। दस महीने में तो वह खाने के लिये रोता ही नहीं। रोता है केवल सुख-दुख का अनुभव करके। जब उसकी इन्द्रिय में (organs) किसी तरह की कमी आ जाती है वा थक जाता है तो वह रोता है। सुख का अनुभव होने पर उसकी आँखों में आनन्द छा जाता है। मुस्कराना तो बच्चा कम-से-कम चालीस दिन बाद सीखता है। बच्चा इस समय थकता बहुत है अतः कुछ दिन तक प्रायः सोता ही रहता है।

प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नं १६ का उत्तर देखिये।

Q. 18.—Give a brief idea of the sensory motor development of a child in the early years of life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० १७ और १६ का उत्तर देखिये।

Q. 19.—Trace the motor development of the child in the early years of life.

बालकों के क्रियात्मक विकास (Motor development) पर प्रकाश डालने के पहले हमें उसकी उपयोगिता को समझ लेना यानी उसका समुचित तात्पर्य (meaning) समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके सम्बन्ध में हम इतना कह देना चाहते हैं कि बालकों के जीवन में उनका क्रियात्मक (motor) विकास अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह बच्चों में सामाजिक एवं बौद्धिक (Social and intellectual) विकास के लिये अत्यावश्यक है। शारीरिक-गतिविधि (Motor activities) द्वारा ही बालक अपने वातावरण के पदार्थों (Objects) के सम्पर्क में आता है अथवा इसके विषय में जानता है। इसके अन्तर्गत हम बालकों के, किसी काम को हाथ से करने (Manipulate) की शक्ति, बैठने की योग्यता, चलना (walk) एवं दौड़ना, आदि का अध्ययन करेंगे तथा यह देखने की कोशिश करेंगे कि किस उम्र में उनमें कौनसी योग्यता आती है।

शरीर के अन्दर बहुत सी पेशियाँ (muscle) इस तरह से जोड़े में (in pairs) बनी हुई हैं कि उनमें से जब एक सिकुड़ती (Contract) है तो दूसरी फूलती (relax) है। यदि दोनों की दोनों पेशियाँ एक ही साथ सिकुड़ें अथवा फूलें तो शरीर में कुछ भी गति (motion) न रहेगी वरन् शिथिलता (relaxation) आ जायगी।

जब बच्चा किसी समय अधिक क्रुद्ध (angry) अथवा भयभीत हो जाता है तो उसमें ऐसी अवस्था देखने को आती है। स्नायविक नियन्त्रण (muscular control) का विकास उसकी नाड़ियों (nerves) की सबलता (maturation), पेशी की बनावट एवं उसके व्यवहार (practice) में लाने पर निर्भर करता है।

जो क्रिया सयाने के लिये बहुत आसान होती है वही क्रिया एक बच्चे के लिये बड़ी कठिन रहती है। जो माता-पिता अपने बच्चे से छोटी उम्र में ही कार्य लेने की इच्छा यह समझकर कि यह काम बहुत आसान है, रखते हैं, वे अपने लड़के के हक में फायदा से अधिक नुकशान करते हैं। बच्चों में विकास के लिये उनकी गति (Movement) में स्वतंत्रता अत्यन्त जरूरी है। इस समय बालकों को अनियमित (Random) क्रिया एवं असमकक्ष (Unco-ordinated) गति की आवश्यकता होती है जिससे उन्हें कई प्रकार की मौलिक (Fundamental) सांवेदनिक (Sensory) अनुभव प्राप्त होते हैं।

इस समय बच्चे को, इन सब चीजों को सीखने के लिये न तो किसी शिक्षक की आवश्यकता है और न अन्य अभिभावकों की। बच्चा स्वतः पहले साधारण तथा बाद में जटिल (Complex) क्रियाओं को करना सीख जाता है। लेकिन हाँ, यहाँ इतना अवश्य ध्यान देना चाहिये कि बच्चों का क्रियात्मक विकास जैसे-तैसे (Haphzard manner) नहीं होता वरन् उसमें एक क्रम (Sequence) होता है। यह विकास नियमित रूप से

(Regularly) होता है। सबसे पहले उसके नेत्र विकसित होते हैं तब सिर, फिर गला और तब हाथ एवं शरीर के ऊपरी हिस्से (Upper portion of the trunk) और अन्त में शरीर के निचले हिस्से (Lower portion of the trunk) जिसमें पाँव, अँगुलियाँ (Fingers) आदि का विकास भी हो जाता है। इस तरह इसमें क्रम (Order) पाया जाता है जो प्रायः सामान्य बच्चों में (Normal child) में पाया जाता है। यदि इस पर और विचारा जाय तो पता चलेगा कि बच्चे जन्म के बाद ही आँख से ताकना वा पपनी चलाना शुरू कर देते हैं। एक महीने की उम्र में बच्चा अपना सिर घुमाने लगता है। चार महीने की उम्र में वह अपना सिर सीधा रख सकता है। छः महीने की उम्र में लड़का थोड़ी देर के लिये बैठ सकता है। नौ महीने की उम्र में वह अकेले बैठने लायक हो जाता तथा पेट के बल चलने लगता है (Begins to creep)। एक साल की उम्र में वह स्वतः बैठ जाता है तथा किसी वस्तु को देखता तथा पकड़ लेता है। पन्द्रह महीने की उम्र में बच्चा चलने लगता है बिना किसी की सहायता से। दो साल की उम्र में बच्चा दौड़ने लगता है। चार साल की उम्र में बच्चा खूब अच्छी तरह दौड़ने लगता है, पाँच साल की उम्र में बच्चे की गति में पूर्ण विकास हो जाता है।

यदि हम अपने दृष्टिकोण को थोड़ा और व्यापक बनाना चाहें तो हमें बालकों के विकास के कुछ और तह में जाना होगा। हम ऊपर देख चुके हैं कि क्रियात्मक (Motor) विकास

शुरू होने पर प्रथम उसमें स्नायविक नियंत्रण (Muscular control) में विकास हुआ था। अब हम क्रमशः सिर से लेकर पैर (head to foot) तक होनेवाली विकास की अवस्था पर संक्षिप्ततः विचार करेंगे।

क्रियात्मक विकास में दूसरा विकास बच्चों के सिर नियंत्रण (Head control) में होता है। जन्म के पश्चात् बच्चे अपने सिर को सीधा रखने में असमर्थ रहते हैं। उन्हें जिस तरह रख दिया जाय उससे अधिक नहीं कर सकते। यदि एक महीने के बच्चे के सिर को किसी सहारा (Support) पर सीधा कर दिया जाय, तो सहारा के हटने पर उसका सिर सीधा नहीं रह सकता वरन् सीधे गिर जायगा। दो महीने का लड़का किसी तरह अपने सिर को सीधा रख सकता है। इस समय जब उसे पेट के बल सुला दिया जाय तो वह अपने सिर को जमीन से ३० डिग्री का कोण बनाते हुए ऊँचा उठाने लायक हो जाता है। चार महीने की उम्र में वह अक्सर अपने सिर को घुमाने लगता है। इस समय पचहत्तर प्रतिशत बच्चे अपना सिर सीधा (Erect) करने लगते हैं, जब कि उन्हें समुचित सहारा (Support) मिलता है तथा छः महीने मे तो सभी लड़के ऐसा करने लगते हैं। गेसेल महोदय का कहना है कि यह नियंत्रण मौलिक रूपेण (Fundamentally) नाड़ी-तंत्र (Nervous system) की सबलता (Maturation) पर निर्भर करता है न कि बालक के स्वास्थ्य पर।

जन्म के दश रोज बाद ही बच्चे में कुछ कड़ापन (regi-

dity) आने लगती है। जब बच्चा चार महीने का होता है तो प्राय: प्रत्येक लड़का, एक गोद से दूसरे गोद जाते वक्त अपना शरीर कड़ा कर लेता है। यदि उसे अपने पीठ के बल सुला दिया जाता है तो वह साधारणतः बैठने की कोशिश करता है। तनिक सहारा मिलने पर चार महीना में बैठ भी जाता है। आधे से दो तिहाई लड़के छः महीने में बैठ जाते हैं एवं नौ महीने की उम्र में सभी लड़के बैठना शुरू कर देते हैं।

सम्भवतः अठारह महीने की उम्र में सभी लड़के स्वयं खड़े हो सकते हैं। कुछ लड़के तो सालभर पर ही चलना सीख जाते हैं। इस विकास पर परिपोषक अंग (nutritional factors) का असर पड़ता है। यदि बच्चों का हाथ पकड़ लिया जाय तो साल भर की अवस्था में सभी लड़के खड़े हो जा सकते हैं। नौ महीने की उम्र में आधे से कम लड़के ऐसा कर सकते है। अस्वस्थता के कारण इस विकास में समय की गड़बड़ी हो सकती है। शर्ली (shirley) के मुताबिक बालकों का यह विकास छः सीढ़ियों से होकर गुजरता है—(i) पहले पीठ के बल पड़े रहकर सिर उठाना, (ii) क्षण भर के लिये बैठना, (iii) स्वतः बैठना, (iv) किसी चीज के सहारे खड़ा होना, (v) किसी चीज के सहारे स्वयं खड़ा होना, (vi) अन्त में वह खड़े से बैठना शुरू कर देता है।

इसी दृष्टिकोण से जब हम बालकों की गति (locomotion) विकास (development) पर ध्यान देते हैं तो देखते हैं कि यह बालकों के विकास (development) में अपना प्रमुख

स्थान रखता है। यह विकास प्रायः बालकों में नौ महीने से लेकर अठारह महीने तक होता है। बालकों में कम-से-कम तीन तरह की गति (locomotion) देखा जाता है। वे हैं— रेंगना (crawling), घुसकना (creeping) एवं चलना (walking)।

बालक के रेंगने (crawling) का मतलब है कि इस अवस्था में वह जमीन से अपने शरीर को नहीं उठाता तथा चारों हाथ पैर को चलाता है। इस समय वह बैठ कर चल सकता है। हाथ पैर इस गति में उसके सहायक होते हैं।

घुसकने (creeping) की दशा पर जब हम अपना दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि सर्वप्रथम बच्चा पेट के बल (on the stomach) चलता है। इस समय उसका सिर ऊपर उठा रहता है, ठुड्ढी (chin) स्वतंत्र रहती है। कुछ दिन बाद उसका सिर तो उठा ही रहता है छाती (chest) भी स्वतंत्र हो जाती है पर चलता है पेट के बल ही। तीसरी हालत में उसे घुटने को घसीटते हुये (knee pushing) चलते पाते हैं। चौथी दशा में बच्चा लुढ़कने (rolling) लगता है। पाँचवी अवस्था में हाथ के सहारे इधर-उधर (to and fro) चलने लगता है। इस समय उसे चलते समय पीछे देखने की इच्छा भी होती है। अन्त में वह स्पष्टतः आगे की ओर घुसकने लगता है (begins to creep)। उसके चलने में जो विकास होता है उनमें से कुछ द्रष्टव्य है। सर्वप्रथम तो वह खड़ा होना किसी दूसरे की सहायता से सीखता है। अब वह सहायता

पाने पर चलने लगता है। अतः उसमें स्वयं खड़ा होने की शक्ति आ जाती है। तब धीरे-धीरे वह अकेले चलने (walk) भी लगता है। जब वह चलना सीख लेता है तब उसको चाल में विकास होता है। वह यों हैं—कुछ समय बाद उसकी (speed) में वृद्धि होती है। अब उसके डेग में चौड़ाई (width) की कमी होती जाती है। सहसा उसके डेग आगे की ओर बढ़ने लगते हैं तथा बच्चा पूर्णतः चलना सीख जाता है।

बालकों के क्रियात्मक (motor) विकास के अन्तर्गत हस्त-नियंत्रण (arm-hand control) पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। इसके फल स्वरूप हम देखते हैं कि बालकों में किसी वस्तु को ग्रहण (grasp) करने की शक्ति हस्त नियंत्रण पर ही निर्भर करती है। हस्त नियंत्रण, दृष्टि एवं स्पर्श (touch and vision) के ज्ञान (sense) के समन्वय (co-ordination) पर निर्भर करता है। बालक में आयु-वृद्धि के साथ-साथ उसके हाथ (hand) एव उँगलियों की पेशियाँ भी सबल होती जाती हैं। इसी के फलस्वरूप नवजात शिशु में किसी वस्तु (object) को ग्रहण (grasp) करने की सामर्थ्य हो जाती है चूँकि हम किसी भी काम को हाथ से ही करते हैं इसलिये कि यह एक महत्वपूर्ण इन्द्रिय (organ) है। बीस हफ्ते की उम्र में बच्चे में हस्त-संचालन (hand movement) शुरू हो जाती है। इस समय बच्चा किसी वस्तु की ओर अपना हाथ भी फैलाने लगता है। साठ हफ्ते की अवस्था में बच्चे में सीधे (directly) किसी वस्तु को सयाने की तरह लेने (grasp) की शक्ति आ जाती है।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी बालकों में उपर्युक्त विधि से ही क्रियात्मक (motor) विकास होता है। किन्तु ऐसा समझना उचित नहीं। हर बच्चे में उसके विकास का एक अपना ढंग (style) होता है जो जन्मजात होता है। कोई भी दो लड़के न तो ठीक एक-सा हो सकते है न उनकी वृद्धि (growth) ही एक तरह से हो सकती है। अतः हर बच्चे के विकास में अपना आदर्श (Pattern) है। किन्तु हाँ, उन सबो में एक क्रम होता है जो हर बच्चे के विकास मे सामान्य (general) रूप से पाया जाता है।

Q. 20.—Describe the main stages of child development in a general way.

बालकों के विकास साधारणतः (in a general way) किस प्रकार से होते हैं इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि जन्म से लेकर बाल्यावस्था तक बालकों में कौन-कौन से गुण स्वभावतः (natural) होते हैं। इसके अन्तर्गत बालको के ज्ञानात्मक (sensory) क्रियात्मक (motor), भाषा (language), व्यक्तित्व (personality), सामाजिक (social), बुद्धि (intelligence) एवं संवेगात्मक (emotional) विकास पर विचार करेंगे। हाँ, पर यह ध्यातव्य है कि इन्हीं उपर्युक्त गुणों के सामञ्जस्य से ही एक बालक सुन्दर नागरिक हो पाता है। यद्यपि ये चीजे स्वतः होती हैं पर इनका विकास क्रमशः होता है, किन्तु होता है बाल्यकाल में ही। अतः बाल्यकाल में

अभिभावकों को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। जीवन के शेष काल मे तो केवल उन गुणों का प्रदर्शन मात्र होता है।

बालकों मे ज्ञानात्मक विकास उनके जन्मकाल से ही शुरू होता है। सर्वप्रथम उनमें दृष्टिज्ञान होता है। पहले वह किसी चमकीले पदार्थ को ही देखता है। प्रधानतः रोशनी पर उसकी नजर जल्द जाती है। धीरे-धीरे उसे अन्य चीजों को देखने की क्षमता आती है। धीरे-धीरे दृष्टि में स्थिरता आती है तब वह किसी चीज को इच्छापूर्वक देख सकता है। अनुभव एवं आयु में वृद्धि के कारण अब वह वस्तु का अर्थ भी समझने लगता है। धीरे-धीरे उसके दृष्टियन्त्र सबल हो जाते हैं तथा वह सूक्ष्म चीजो पर भी ध्यान लगाने लगता है। इसी समय उसमे रस (taste) ज्ञान, स्पर्श (touch) ज्ञान, श्रवण (hearing) ज्ञान, शीतोष्ण (thermal) ज्ञान, एवं अन्तरावयव ज्ञान भी क्रमशः अपने-अपने समय पर होते जाते हैं। इसके फलस्वरूप बच्चा जीवन मे वस्तुओं को समझने एवं अपनी आवश्यकतानुकूल उपयोग करने मे समर्थ हो पाता है। यो तो उपर्युक्त सभी ज्ञान बालकों मे अनिवार्यतः उचित समय पर हो ही जाते हैं फिर भी उनके वंशानुक्रम, वातावरण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य का असर यथेष्ट मात्रा मे पड़ता है।

बालकों के क्रियात्मक विकास को समझने के लिये हमे यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह बच्चो के सामाजिक एवं बौद्धिक विकास में सहायक है। शारीरिक गति-विधि के द्वारा ही बालक अपने वातावरण की वस्तुओ के सम्पर्क मे आता है तथा उसके

विषय में जानता है। इसके अन्तर्गत हम बालको के किसी काम को हाथ से करने की शक्ति, बैठने की शक्ति, चलने का सामर्थ्य एवं दौड़ने की योग्यता का विकास देखते हैं। इस विकास के फलस्वरूप बच्चे मे प्रथम स्नायविक (Muscular) नियंत्रण होता है। बाद में सिर से लेकर पैर तक की कर्मेन्द्रियो मे क्रमशः विकास होता है। यहाँ इतना ध्यान में रखना चाहिये कि इनका यह विकास क्रमिक होता है। पहले सिर नियंत्रण होता है, फिर सहारा पाकर खड़ा होता है, साथ ही बैठने की योग्यता भी आ जाती है। बाद मे इसमें गति का विकास होता है। इसके अन्तर्गत पहले वह रेंगता है, फिर घुसकता है तब चलने की शक्ति आ जाती है। चलने में भी प्रथम वह इधर-उधर (To and fro) चलता है बाद मे उसमे और विकास होता है तथा उसका डेग (Step) नियंत्रित होता है और अपनी इच्छा से चलने फिरने लगता है। इस नियत्रण के आधार पर उसमें किसी वस्तु को ग्रहण करने की शक्ति आती है। इसी इन्द्रिय के सहारे वह विश्व में कुछ कर पाता है। यह मनुष्य की एक महत्वपूर्ण इन्द्रिय है। इसका विकास भी स्वभावतः आयु वृद्धि, इन्द्रियों की सबलता एवं अनुभव पर निर्भर करता है। लम्बे अरसे के बाद बच्चा किसी वस्तु को ग्रहण करने में समर्थ हो पाता है।

बच्चो के भाषा के विकास मे भी इसी तरह परिवर्तन होते हैं अन्त मे उनकी बोली साफ-साफ निकलने लगती है। यह एक महत्वपूर्ण क्रिया है। इसी के आधार पर बालक अपने

भावों को व्यक्त कर पाता है। जब बच्चा किसी कमी को महसूस करता है तो उसे बोलने की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम तो वह रोकर ही अपनी बात को व्यक्त करता है जो उसकी माता ही समझ पाती है। क्रमशः उसमें एक शब्दीय वाक्य बोलने की क्षमता आती है। यह प्रधानतः निर्भर करता है बालकों के वाक्-यंत्र (Vocal organ) की सबलता पर। आयु में वृद्धि होने से उसकी वाक्-शक्ति सबल होती जाती है तथा बच्चा स्पष्ट बोलना शुरू कर देता है। उसमें कुछ अपवाद भी होते हैं, जो लड़का स्वस्थ होता है वह बहुत जल्द बोल सकता है पर अस्वस्थ बालक कुछ देर में बोलना सीखता है। फिर जिस लड़के को बोलने का बहुत कम मौका मिलता है अथवा बोलने पर रोक लगा दी जाती है वह बच्चा बहुत देर से बोलना सीखता है। निरर्थक शब्दोच्चारण, सहज अनुकरण और शब्दार्थ ज्ञान ये तीन बातें बालक के बोलने के प्रथम प्रयास में सदा पाई जाती हैं। यदि भाषा के विकास की अवस्था पर ध्यान दें तो हमें निम्नलिखित बातें मिलती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में जन्म से १ साल तक निरर्थक शब्दोच्चारण; दूसरी अवस्था में एक से डेढ़ साल तक एक शब्दीय वाक्योच्चारण, तीसरी अवस्था; डेढ़ से ढाई साल तक सरल वाक्योच्चारण, तथा चौथी अवस्था ढाई से आगे की, जटिल वाक्योच्चारण की होती है। पश्चात् आवश्यकतानुकूल उनके भाषा का विकास होता जाता है। लड़कियों में भाषा विकास लड़कों की अपेक्षा बहुत जल्द होता है।

स्वास्थ्य, सौन्दर्य, स्वभाव, शरीर की बनावट, केश की बनावट, वस्त्र एवं बुद्धि के सामंजस्य को ही व्यक्तित्व कहते हैं। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं रहता। ज्यों-ज्यो उसकी इन्द्रियाँ सबल होती जाती हैं त्यों-त्यों उसके व्यक्तित्व में विकास हो जाता है। बच्चे में जितने प्रकार के विकास पाये जाते हैं उन्हीं के फलस्वरूप उसका व्यक्तित्व विकास होता है। इस विकास मे बच्चे पर उसके माँ-बाप एव वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। जो बालक जिस प्रकार के वातावरण मे रहता है उसी तरह उसके व्यक्तित्व का भी विकास होता है। व्यक्तित्व वही है जिससे हम किसी के अभाव को समझते हैं। इसकी उपयोगिता जीवन के हर क्षेत्र में होती है।

बच्चो का सामाजिक विकास तो पूर्णतः उसके समाज पर ही निर्भर करता है। वह जिस तरह के समाज में पाला-पोसा जायगा वैसा ही सामाजिक भी होगा। अतः इसका विकास पूर्णतः अप्रत्यक्षरूप में ही होता है। बालकों का मन अनुकरणात्मक होता है। वह अपने सयानो को जिस तरह देखता है उसी तरह खुद भी होना चाहता है। इसीलिये बालकों की संगति पर अभिभावको का ध्यान विशेष रहना चाहिये।

जब लड़का समाज मे प्रविष्ट कर जाती है तो वह अपने को उसका अंग मानने लगता है। वह अपनी करामात से समाज में यश पाना चाहता है अतः वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है। जो बालक जितना ही सुव्यवस्थित समाज में रहता

है वह उतना ही सुन्दर कार्यों में अपनी बुद्धि लगाता है। फलतः उसकी बुद्धि आगे की ओर बढ़ती जाती है। अपनी इस बढ़ती हुई बुद्धि के कारण बच्चा अपने समाज में आदर पाता है जिससे वह और भी जीवन में प्रोत्साहित होता है। दिन-प्रति-दिन बुद्धि विकसित होती जाती है।

बुद्धि के प्रयोग के लिये उसमें विचार की आवश्यकता होती है। इसी तरह बुद्धि के साथ विचार करने की सामर्थ्य भी आने लगती है। विचार के आधार पर ही वह अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय दे पाता है। पहले वह वस्तु का ज्ञान करता है, अपनी बुद्धि के आधार पर, पश्चात् उससे होनेवाली क्रिया का ज्ञान करता है फिर उसका सम्बन्ध अन्य वस्तुओं से जोड़ता है। इस तरह क्रमशः उसका विचार विकसित होता जाता है।

संवेग मनुष्य का वैयक्तिक तथा आन्तरिक अनुभव है। एक ही विषय के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मनुष्यों के भिन्न-भिन्न मनोभाव हो सकते है। यह निर्भर करता है उस व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर। बालकों मे जन्मकाल के बाद प्रेम, भय एवं क्रोध का संवेग पाया जाता है। जब बच्चे को किसी चीज की आवश्यकता होती है पर उसकी पूर्त्ति नहीं होती तो उसे क्रोध होता है। क्रोध करने पर यदि उस वस्तु की प्राप्ति हो जाती है तो बच्चा क्रोधी स्वभाव का हो जाता है। इसी तरह जब बच्चा किसी भयावह चीज को देखता है तो डर जाता है। अभि-

भावकों की गलती से इस संवेग में भी वृद्धि हो सकती है। किन्तु अच्छे माँ-बाप इस सबसे अपने बच्चे को बचाते रहते हैं।

बच्चे बाल्यकाल मे सर्वप्रथम अपने माँ से प्रेम करना सीखते है। फिर अपने नजदीक मे रहनेवाले लोगों से, तत्पश्चात् अपने खिलौने से। सयाने होने पर उनका प्रेम अपने सहपाठियो की ओर बढ़ता है तथा अन्त में देशवासी, पुरवासी एवं विश्व के प्रति भी बढ़ता जाता है। यह विकास पूर्णतः उनके समाज, शिक्षा एवं अनुभव पर निर्भर करता है। अच्छे माँ-बाप को बच्चे को किसी खास व्यक्ति पर प्रेम नही करने देना चाहिये। उसे उदार बनाने की कोशिश करनी चाहिये। बाद में बच्चे मे आह्लाद, घृणा, द्वेष, दुःख आदि का संवेग होता है जो शिक्षा एवं अनुभव पर निर्धारित है। शोक (grief) का संवेग जीवन में काफी अनुभव एव ठोकर लगने के बाद होता है।

इस तरह हम देख चुके कि बालको मे किस तरह से स्वतः विकास होता है। उनके इस विकास मे अभिभावकों को कुछ करना नहीं पड़ता किन्तु, हाँ, निरीक्षण करना उन्हीं का काम होता है, जिससे बच्चे का विकास अनुचित ढंग पर न हो जाय।

CHAPTER 5

ACTION

(क्रिया)

Q 21.—What is reflex action ? What are its different forms ? Describe the part it plays in childrens' behaviour.

विश्व के सभी जीवधारियों की प्रमुख विशेषता क्रिया-शीलता है। जितनी भी क्रियायें होती हैं वे सभी प्राणी तथा वातावरण के संघर्ष स्वरूप होती हैं। यहाँ हम मानव क्रिया पर साधारणरूप से प्रकाश न डालकर उसकी सहज क्रियाओं (Reflexes) पर ही विशेषरूप से प्रकाश डालेंगे।

इसकी विवेचना करने के पहले हमें यह समझ लेना आवश्यक होगा कि जब बालक उत्पन्न होता है तो वह पूर्णतः क्रिया-विहीन नहीं रहता। उस समय उसके अन्दर कई स्वायत्त (Automatic) क्रियायें स्वतः होती रहती है। इस समय बालकों में कुछ सहज क्रियाएँ (Reflex action) भी पाई जाती हैं, जैसे हँसना, रोना, चिल्लाना, आँखें (पपनी) चलाना, मुस्कुराना आदि।

किसी सांवेदनिक उत्तेजना (Sensory stimulus) के समुपस्थित होने पर उस उत्तेजना के प्रतिकार स्वरूप (response) कोई-न-कोई क्रिया तत्काल ही होती हैं जो प्रायः पेशिक अथवा स्नायविक (muscular or grandular) होती है। ऐसी प्रति-क्रिया (reaction) को सहज क्रिया (reflex action) कहते हैं। सहज क्रिया में प्रतिक्रिया किसी उत्तेजना के उपस्थित होने पर तुरत ही (immediately) हो जाती है। जब हमारी नाक में कोई पदार्थ प्रविष्ट कर जाता है तो हम तुरत ही छींक देते हैं या यों कहिये छींक आ जाती है, अथवा जब हमारे पैर पर कोई कीड़ा चढ़ने लगता है तो हम अपना पैर झटकार देते हैं। यहाँ पर पैर झटकारने अथवा छींक आने में कोई विलम्ब नहीं होता। सहजक्रिया अत्यन्त सरल होती है। किसी

उत्तेजना की उपस्थिति होते ही तत्काल ही सहज क्रिया उत्पन्न होती है। इस क्रिया में कभी परिवर्त्तन नहीं होता। एक प्रकार की उत्तेजना से प्रभावित होकर सदा एक ही प्रकार की सहज क्रिया भी होगी। सहज क्रिया को रोका नहीं जा सकता। जब कोई पदार्थ हमारी नाक में प्रविष्ट कर जायगा तो हम चाहने पर भी छींक को नहीं रोक सकते। सहज क्रियाओं की शक्ति हममें जन्मजात होती है। हम पहले ही व्यक्त कर चुके हैं कि सहज क्रियायें उत्तेजना के कारण ही होती है। उत्तेजनायें (stimulus) दो प्रकार की होती हैं। हमारी कुछ सहज क्रियायें वाह्य उत्तेजनाओ (external stimulus) के कारण होती हैं एवं कुछ शारीरिक व्यतिक्रम के कारण। जब हमारी आँख में कोई पदार्थ पड़ जाता है तो आँख से आँसू गिरने लगते हैं। इसी प्रकार शारीरिक व्यतिक्रम के कारण हममें खाँसने की सहज क्रिया होती है। इसका कारण कोई वाह्य उत्तेजना नहीं होती। इसको और स्पष्ट (clear) करने के लिये हम कुछ सहज क्रियाओं का संक्षिप्तत: वर्णन करेंगे।

इस सम्बन्ध में हम देखते हैं कि जब हमें पैर झटकारने की सहज क्रिया होती है तो उसके लिये विचार की जरूरत नहीं पड़ती वरन् कीड़ा के चढ़ने पर स्वतः झटकार देते हैं। इसी तरह जब हम प्रकाश में जाते हैं, तो हमारी आँख की पुतली बढ़ जाती है तथा अन्धकार में जाने पर पुतली घट जाती है। जब हमारी नाक में कोई पदार्थ चला जाता है तो हम योंही छींक देते है, बिना कुछ सोचे विचारे। इसी तरह जब

हमारी आँख के नजदीक कोई पदार्थ आता है तो आँख की पलकें स्वतः ढक जाती हैं। किसी खाद्य पदार्थ को देखते ही किसी-किसी को 'लार आने की सहज क्रिया' होती है। सहज क्रिया का एक उदाहरण हमें उस समय मिलता है जब हमारी आँख मे तिनका, धूल अथवा कीड़ा पड़ जाता है तब हमारी आँखों से स्वतः आँसू गिरने लगता है। इन क्रियाओं के अतिरिक्त भी कई सहज क्रियायें होती हैं जैसे, जम्हाई लेना, वमन करना, खुजलाना आदि, किंतु उनके वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। क्योंकि सहज क्रिया को समझने के लिये इतना जानना ही पर्याप्त होगा।

अब सहज क्रिया के विभिन्न प्रकारो पर प्रकाश डालने के लिये यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि सामान्य रूप से हम सहज क्रिया को दो प्रकार में विभक्त कर सकते है, जैसे, शारीरिक तथा सांवेदनिक सहज क्रिया। जिन सहज क्रियाओं की प्रतीति हमे नहीं होती उन्हे शारीरिक सहज क्रिया कहते है। प्रकाश मे जाने पर हमारी आँख की पुतलियाँ बड़ी हो जाती है और अन्धकार मे जाने पर वे पुतलियाँ छोटी होती है। इन पुतलियों के घटने-बढ़ने का ज्ञान हमे नहीं होता है, इसलिये इन्हे शारीरिक सहज क्रिया कहते हैं।

जिन क्रियाओं की हमे प्रतीति होती है उन्हे साम्वेदनिक सहज क्रिया कहते हैं। छींकना, खाँसना इत्यादि को सांवेदनिक सहजक्रिया कहते है, क्योंकि इनका ज्ञान हमे हो जाता है। सहजक्रियाये चेतनायुक्त नहीं होती है। अपितु जब ये क्रियायें हो जाती हैं तब हमे उनकी चेतना हो जाती है। जब कोई पदार्थ

नाक में चला जाता है तो सहसा हमें छींक आ जाती है किंतु छींक आ जाने पर हमे यह ज्ञात हो जाता है कि हमे छींक आ गई है। सांवेदनिक सहज क्रियाओ की हममें चेतना अवश्य रहती है किंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम उन्हे नियंत्रित कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि हमारी शारीरिक सहज क्रियायें निरंतर एकरूप तथा नियमित होती हैं और उनका ज्ञान भी हमें नहीं रहता, किंतु सांवेदनिक सहज क्रियाओं की प्रतीति हमें होती है। यदि हम किसी काम में संलग्न है और खाँस रहे है किंतु इसका ज्ञान नहीं है तो इसे शारीरिक सहज क्रिया कहेंगे, सांवेदनिक नहीं।

अब हम सहज क्रिया के प्रकार (forms को थोड़ा और विशेषरूप से देखने की परिचेष्टा करेंगे। अपने दृष्टिकोण को थोड़ा बढ़ाने पर हम इसमे निम्नांकित भेद पाते हैं। वे ये है—जब हम बच्चे के तलवे के नीचे सुहलाते है या किसी तरह से उत्तेजित करते हैं तो वह अपने बड़े अँगूठे (big toe) को फैला देता है तथा अन्य अँगूठे को पंखाकार (fan shaped) फैला देता है। मनोवैज्ञानिको ने इसको (babinski or plautar) सहज क्रिया कहा है। जन्म के बाद ही बच्चे मे कपोल सहज क्रिया (cheek reflex) पाया जाता है। इसमे जब बच्चे के गाल पर स्पर्श किया (tap) जाता है तो वह सहसा अपना सिर घुमा देता है। इसी उम्र मे उसमें pupilary reflex भी हो जाता है। इसमें बच्चा अपनी आँख को प्रचण्ड रोशनी आदि से बचाने के लिये अपनी पपनी को तुरत बन्द कर लेता है।

इस समय किसी-किसी बच्चे मे grasping reflex भी हो जाता है। इसका उदाहरण हमें उस समय देखने को आता है जब हम बच्चे के हाथ के निकट कोई चीज या छड़ (rod) को ले जाते हैं तो वह उसे तुरत पकड़ लेता है। कभी-कभी तो छोटा बच्चा उसके सहारे अपने आप सिन्टो तोल (weight) लेता है। यह सहज क्रिया बन्दरों में अधिक पाई जाती है तथा मानव जाति में चार महीने के बाद दूर होने लगती है।

इन सहज क्रियाओं के अलावा कुछ अन्य सहज क्रियायें भी हैं जिनका नाम विश्वविख्यात (universal) हो जाता है। सहज क्रियायें भी जन्म के पश्चात् ही पाई जाती हैं। इन सहज क्रियाओ में रोना (crying), ऊँघना (yawning), sneezing, hic-coughing मुस्कुराना (smiling) एवं चूसना (sucking) का नाम यहाँ द्रष्टव्य है। यो तो उपर्युक्त सभी सहज क्रियायें अपने-अपने रूप से महत्त्वपूर्ण हैं ही, पर उन सबों मे चूसने की सहज क्रिया का स्थान प्रमुख है। इससे मनुष्य के जीने में बड़ी सहायता मिलती है। अँगूठा को चूसकर लड़के अपनी भूख की ज्वाला शांत करते है तथा उससे एक खास प्रकार का आनन्द होता है जो उनके जीवन में बड़ा सहायक होता है।

सहज क्रियाओं के स्वभाव एवं भेद की व्याख्या कर लेने के बाद, अब हम उनका, बालकों के व्यवहार (behaviour) पर क्या असर पड़ता है इस पर विचार करेंगे। इस समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि सहज क्रिया (reflexes)

बालकों और सयानों के लिये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है। सभी सहज क्रियायें तो नहीं, किंतु कुछ सहज क्रियायें कालक्रम में विलीन हो जाती हैं और उनके स्थान पर अन्य प्रतिक्रियाये बच्चे सीख लेते हैं। वाटसन ने बच्चो पर प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया है कि बच्चों का सीखना सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के द्वारा होता है। कड़े शब्द (loud noise) को सुनकर बच्चा भयभीत हो जाता है किंतु उसी उच्च स्वर का सम्बन्ध किसी उत्तेजना से कर दिया जाता है तो वह बच्चा उस उत्तेजना से डरना सीख जाता है। इसी प्रकार के सभी भावात्मक तथा अभावात्मक शिक्षणों के आधार हमारी सहज क्रियाये होती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि बच्चो के व्यवहार मे reflexes का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।

Q. 22.—What is reflex action ? Mention its dfferent forms as found in children Does reflex action play any part in the learning process of children ?

इसके उत्तर के लिए प्रश्न नम्बर २१ का उत्तर देखिये।

Q. 23.—Describe the main types of original responses in children.

बच्चों की मौलिक (original) प्रतिक्रियाओ (responses) के प्रमुख प्रकारों (types) का वर्णन करने के लिये हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि इसके सम्बन्ध मे विभिन्न सिद्धान्त हैं लेकिन यहाँ हम कुछ प्रमुख सिद्धान्तो पर ही प्रकाश डालेंगे।

एक सिद्धान्त के अनुसार बच्चा एक सयाने का ही प्रतीक रहता है (miniature adult) अतएव वह सयानो की सभी प्रतिक्रियाओ को अपूर्ण रूपेण करता है। अन्तर केवल इतना ही है कि वह सम्भाषण और बुद्धि आदि का ही प्रकाशन नहीं करता। लेकिन यह सिद्धान्त कई कारणो से प्रतिपन्न नहीं है।

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार बच्चा सहज क्रियाओ का समुच्चय मात्र है (bundle of reflexes) अर्थात् जब बच्चा उत्पन्न होता है तो वह तरह-तरह की क्रियाओ को ही करता है। इनमे कुछ सरल और कुछ जटिल (complex) होती हैं। इन्हीं सहज क्रियाओ के परिष्कार (modification) से अन्य प्रकार की प्रतिक्रियाओ का आविर्भाव होता है।

तीसरे सिद्धान्त के अनुसार बच्चों के प्रारम्भिक व्यवहार सामान्य स्वरूप (of general nature) के होते हैं—इसी को आज कल प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक मानते है। लेकिन यहाँ हम बच्चो की कुछ प्रमुख मौलिक प्रतिक्रियाओ पर प्रकाश डालेगे।

हाँ, जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उस समय सर्वप्रथम क्रन्दन (crying) की प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया से बच्चो के lungs मजबूत होते हैं। जब बच्चे को भूख लगती है तो चूसने (sucking) की प्रतिक्रिया होती है। इसमें बच्चे अपने ओठ (lips) से उस चीज को धीरे से पकड़ लेते हैं तथा चूसने लगते हैं। जन्म के कुछ काल बाद नाजायज पदार्थ (waste products) का लोप (elimination) होने लगता है। जन्म पश्चात् (postnetal) बच्चे मे अनिवार्यतः खाने

(eating), साँस लेने (breathing) तथा नाजायज वस्तुओं का लोप (elimination of waste products) की तीन प्रतिक्रियाये शुरू हो जाती हैं। इनके साथ ही सोने (sleeping) की प्रतिक्रिया भी होती है। ये प्रतिक्रियाएँ जन्म के कुछ सेकेंड से लेकर कुछ घण्टों के अन्दर शुरू हो जाती हैं।

नवजात शिशु चौबीस घंटे के अन्दर करीब बीस (twenty) घंटा सोने में ही बिताता है। इसकी नींद अक्सर भूख (hunger) लगने पर ही टूटती है। भूख दूर होते ही बच्चा फिर सो जाता है। जब बच्चा सोकर उठता है तो बहुत सक्रिय (active) दीख पड़ता है। इस समय वह अपने हाथ, पैर, को इधर-उधर हिलाने लगता है। ओठ में गति आ जाती है, हाथ, आँख एवं नाक को अनियमित (random) रूप से गतिशील बना देता है। सोकर उठने पर वह तुरत ही रोना शुरू कर देता है। यह क्रिया कुछ काल तक जारी रहती है। इस अवस्था में अंग-प्रत्यंग कार्यशील (active) हो जाते हैं। इस समय वह अपने हाथ-पैर को फैलाता (extend) या सिकोड़ता है। अपने सर को घुमाता तथा जोर से रोता है। जन्म के २० मिनट बाद बालको मे निम्नलिखित क्रियाएँ देखी गई है। वे ये हैं—sneezing, ऊँघना (yawning) आँसू गिरना, स्तन चूसना (sucking of the nipples), रोशनी पर आँख गड़ाना (fixating on a light), अँगूठे को मुँह में रखना (putting the thumbs in the mouth), grasping, जोर की आवाज पर फुदकना, मुँह खोल कर रोना, आँख

के साथ हाथ को हिलाना, और सिर घुमाना, आदि। यहाँ हमें समझना चाहिये कि उपर्युक्त क्रियाओं का इस उम्र के सभी बच्चों में होना अनिवार्य नहीं है।

जन्म के दश रोज बाद उनके हाथ, पैर, शरीर (body) एवं सिर मे गति (movement) आ जाती है। इस समय वह अपना सर (head) बाये से दायें घुमाता, पीछे की ओर खींचता, मुँह खोलता एवं बन्द करता, अपने ओठ को चूसता, आँखें खोलता एवं बन्द करता और आँख चलाता (winks) है। इस समय वह अपना करवट बदल सकता है। वह अपने हाथों को विभिन्न दिशाओं में फैलाने लगता है। साँस जल्दी-जल्दी लेता है। इस समय उसे छींक आती है, ऊँघता है, ओठ चूसने की आवाज करता है, स्तन चूसने में भी आवाज करता है, साँस से आवाज निकलती है कंठ मे घरघराता है एवं भूख लगने पर रोता है।

ब्रायन महोदय ने दश बच्चों का अध्ययन किया। उन्होंने उन्हे एक टेबुल पर मुँह के बल सुला दिया तब देखा कि २० मिनट के अन्दर ही वे अपने सर (head) को ऊपर उठा लेते थे। इनमे से चार बच्चे अपने घुटने (knees) को खींच लेते थे। ब्लाण्टन (Blantan) ने नौ (nine) लड़कों का अध्ययन किया। उसने देखा कि परीक्षक (examiner's) की गोदी में ये लड़के एक से छः सेकण्ड तक अपना सर (head) उठाये रह सकते थे। पर ऐसी बात असाधारण (unusual) है।

बच्चों की बोली (vocalization) इस समय की निरर्थक नही होती। वह तभी रोता है जब उसे किसी तरह की तकलीफ भूख, अधिक गर्मी या ठंढक लगी हो। बच्चे बोलने के साथ ही शारीरिक क्रिया भी करते है—जैसे, रोने के समय हाथ पैर को चलाना।

इस समय उनमें कई विशिष्ट प्रतिक्रियायें भी पाई जाती हैं। हम ज्योंही बच्चे के ओठ को छूते अथवा गाल पर हाथ रखते त्योंही उसमें उत्तेजना आ जाती है। स्तन एवं ओठ के मिलने पर उसमें भूख की प्रतिक्रिया (hunger reaction) होती है। चूसने (sucking) की क्रिया के साथ ही निगलने (swallowing) की प्रतिक्रिया होती है। बच्चा जब दूध पीता है (माँ का) तो उसे निगलता जाता है। जन्म के २० मिनट बाद बच्चो को अपना अँगूठा चूसते पाया गया है। जब बच्चे के पैर तलवा (sole) छूते हैं तो उसमे plantar reaction होता है यानी वह अपने पैर को फैलाने लगता है।

जब नवजात शिशु के हाथ मे छड़ी (rod) वा अपनी उँगली रक्खी जाती है तो वह उसे तुरत पकड़ने (grasp) की कोशिश करता है, अपना हाथ बन्द कर लेता है। जन्म के दो हफ्ता बाद कभी-कभी दो हफ्ते के अन्दर जब बच्चों को अपनी उँगली पकड़ा दी जाती है तो वह उसके सहारे चलने की (walking movement) कोशिश करता है। एक बच्चे को जन्म के पाँच दिन बाद पेट के बल चलते (creeping) पाया गया, किन्तु यह असाधारण (unusual) है।

यदि बच्चे को रोशनी दिखलाई जाये तो जन्म के कुछ काल बाद ही वह उस पर नजर गड़ाना (fixed stare) शुरू कर देता है। तीन चार हफ्ते की उम्र मे बच्चे जिस तरफ रोशनी (light) जायगी उसी तरफ देखते हैं। इसी तरह उनमें शब्द प्रतिक्रिया (sound reaction) भी होता है। कई तरह से अध्ययन करने पर पता चला है कि सभी बालक जन्म के तुरत बाद आवाज (sound) की प्रतिक्रिया नहीं करते। दो से छः दिन की उम्र में कागज की खरखराहट (rattling of paper) की प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ करता है। एक लड़का दस दिन के अंदर घटी की हल्की आवाज के प्रति कुछ न किया। इस समय वह हल्की आवाज से अधिक जोर की आवाज की प्रतिक्रिया करता था। सुरीली आवाज की प्रतिक्रिया और अधिक रूप से वह करता था।

दो दिन के बच्चे नमक (salt) के देने पर विभिन्न प्रतिक्रिया करते थे। जन्म के एक दिन बाद बच्चे विभिन्न प्रकार की रस उत्तेजना (taste stimulation) जैसे नमक, चीनी, पानी, एट्रिकएसिड (atric acid) कुनायन (quinine) की प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ करते पाये गये। जन्मकाल मे बच्चे में सूँघने की शक्ति (sense of smell) बहुत कम होती है। इस समय एमोनिया (amonia) का असर उन पर अधिक पड़ता है बनिस्पत अन्य घ्राण उत्तेजना (olfactory stimuli) के प्रभाव से। बच्चों मे इस शक्ति का विकास अन्य शक्तियों से देर से होता है।

जन्म के दिन ही बच्चे गर्मी (temperature) की प्रतिक्रिया करते हैं। जन्म के दिन बच्चे में, सूई गड़ाने (pricking with a needle) से प्रतिक्रिया होती है। इस समय बच्चे में संवेगात्मक प्रतिक्रिया (emotional response) होते भी देखा जाता है। जब उसे किसी प्रकार की उत्तेजना दी जाती है तो बच्चा अपनी साँस को रोक लेता है, मुट्ठी बाँध लेता है, तुतलाने लगता है। कभी-कभी ज़ोर से चिल्लाने (cry) लगता है। कोई-कोई तो मारता (kick) भी है तथा कोई झगड़ने (struggle) को तैयार हो जाता है।

इस तरह से हम देख चुके कि बच्चे अपने जन्मकाल (infancy) के बाद ही किस प्रकार की मौलिक प्रतिक्रियाओं (original response) का प्रदर्शन करते हैं। किन्तु यहाँ यह अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये कि उनकी ये प्रतिक्रियायें अस्थिर होती हैं। आयु वृद्धि (maturation) एवं सम्बद्धता (conditioning) के आधार पर उनकी इन प्रतिक्रियाओं में परिवर्त्तन होने लगता है तथा धीरे-धीरे नवजात शिशु (new-born infant) एक बच्चा (child) का रूप धारण कर लेता है।

Q. 24.—Describe the capacities of the child at birth.

इस प्रश्न के लिये प्रश्न नं० ७३ का उत्तर देखिये।

CHAPTER 6

THINKING

(चिंतन)

Q. 25.—State briefly the chief characteristics of children's thinking.

इसके पहले कि हम बच्चों के चिंतन (thinking) की विशेपताओं (characteristics) पर प्रकाश डाले यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बच्चो की चितन प्रक्रिया (thinking) का पूर्णतः परिज्ञान प्राप्त करना कुछ कठिन-सा है क्योकि अन्तर्दर्शन का उनमे अभाव रहता है। इसलिये वे अपनी चितन प्रक्रिया को व्यक्त करने में सफल नहीं होते। फिर भी बच्चे किस प्रकार सोचते है इसका पता लगाना प्रौढ़ व्यक्तियो के लिये कठिन है। जो कुछ भी बच्चों की चितन प्रक्रिया के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है वह अप्रत्यक्ष रूप से ही। बच्चे अपनी चितन प्रक्रिया को अन्तर्निरीक्षण (Introspection) के द्वारा व्यक्त तो करते नही, इसलिये उनके कार्य-कलापो (activities) का निरीक्षण करके ही उनके चितन का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिको ने उनकी चितन प्रक्रिया पर उनसे बातें करके भी प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में हेजलिट (Hazlitt), हेडब्रैडर (Heidbreder) और पाजेट (Piaget) के प्रयोग विशेष सराहनीय हैं। इन लोगो के प्रयोगो के आधार पर हम बच्चो की चिंतन प्रक्रिया (thinking) की निम्नाङ्कित विशेपताएँ व्यक्त कर सकते हैं।

(१) तीन से सात वर्ष की अवस्थावाले बच्चो पर जो चितन सम्बन्धी प्रयोग किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि बच्चो का चितन प्रायः स्वकीय (egocentric) होता है। इसका तात्पर्य यह है कि बच्चे अपने ही सम्बन्ध में सोचते हैं दूसरे व्यक्ति अथवा पदार्थ के सम्बन्ध मे नही। जिस प्रकार उनकी अन्य

क्रियाएँ किसी आवश्यकता की परिपूर्त्ति के लिये होती हैं उसी प्रकार अब उन्हें किसी प्रकार की आवश्यकता का अनुभव होता है तो वे उसी सम्बन्ध में सोचते हैं। यद्यपि बच्चे अपने अन्य साथियों से भी वार्तालाप करते हैं लेकिन यदि उनके बातीलाप पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि उस समय भी वे अधिकांश अपने आप संभाषण करते रहते हैं। प्राय: ऐसा देखने मे आता है कि एक वच्चा अन्य वच्चे से किसी तरह का प्रश्न करता है लेकिन उसके उत्तर की प्रतिक्षा किये विना ही दूसरा प्रश्न पूछ वैठता है। लेकिन यह तीन से सात वर्ष की अवस्था वाले वच्चों में ही पाया जाता है।

वच्चों की चिंतन प्रक्रिया (thinking) की दूसरी विशेषता यह है कि उनके चिंतन मे तार्किक एकरूपता (logical consistency) का अभाव रहता है। वे तार्किक सम्बन्धो को जानने मे असमर्थ रहते हैं इसीलिये तार्किक एकरूपता का भी अभाव रहता है। उनकी चिंतन प्रक्रिया अन्तर्दृष्ट्यात्मक (Insightful) नहीं होती वल्कि क्रियात्मक (trial & error) होती है। इसलिये वे किसी समस्या (problem) को सुलझाने में संयोग वश ही (accidently) समर्थ होते हैं।

तीसरी विशेषता वच्चों के चिंतन की यह है कि वे अपने चिंतन मे निर्जीव पदार्थों को भी सजीव ही समझते हैं। इसीलिये कुछ मनोवैज्ञानिको ने बच्चो के चिंतन को animistic कहा है। बच्चे प्राय: सोचते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा भी मनुष्यो की तरह जीवधारी ही हैं क्योंकि ये भी चलते हैं।

चौथी विशेषता बच्चों के चिंतन की यह है कि उनका चिंतन अत्यन्त साधारण प्रकार (Simple type) का होता है। उनके चिंतन मे जटिलता (Complexity) नहीं होती, क्योंकि उनका मानसिक विकास (Mental development) पूर्णता को प्राप्त नहीं रहता। वे सिर्फ उन्हीं चीजों के सम्बन्ध मे सोचते हैं जो उनके लिये सुगम है।

इसे दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि बच्चो का सोचना प्राय: समूर्त्त (Concrete) होता है अर्थात् बच्चे उन्हीं विषयों और पदार्थों के सम्बन्ध मे सोचते है जो उनके सामने विद्यमान रहते हैं या जिन्हें वे समझते है। वे अनुपस्थित पदार्थ या अमूर्त्त विषयो के सम्बन्ध में सोचने में पूर्णत: असमर्थ रहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि बच्चो का अधिकांश चिंतन अनुभवगम्य विषयो के ही सम्बन्ध में होता है—उससे परे नहीं।

प्राय: ऐसा भी देखने में आता है कि जब बच्चे सोचते हैं तो उस समय अपने आप बोलते भी हैं। जब उन्हें गणित का कोई प्रश्न दे दिया जाता है या और कोई प्रश्न उनकी योग्यतानुसार उनसे पूछ दिया जाता है तो वे उस प्रश्न का उत्तर देने के लिये जब चिंतन करते है तो जो कुछ चिंतन करते हैं उसे बोलते भी जाते हैं। इसीलिये छोटी-छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियो से शिक्षक को बारबार मन में हिसाब बनाने के लिये कहना पड़ता है।

इसी प्रकार और भी कई विशेषताएँ बच्चो की चिंतन

प्रक्रिया की व्यक्त की जा सकती हैं लेकिन वे सभी नगण्य होंगी। प्रधान विशेषताएँ बच्चों के चिंतन की उपर्युक्त ही हैं।

Q 26.—Trace the development of concepts in the child.

बच्चों में सामान्य प्रत्यय के विकास (Development of concept) को व्यक्त करने के पहले हमें यह याद रखना चाहिये कि जिस पद अथवा शब्द (Term) से एक ही प्रकार के अनेक पदार्थों या गुणों का बोध होता है उसे सामान्य प्रत्यय (Concept) कहते हैं। जब हम शेर अथवा बैल कहते हैं तो हमें किसी एक शेर अथवा बैल का बोध नहीं होता बल्कि विश्व में जितने भी शेर अथवा बैल हैं उन सब का बोध होता है। शेर शब्द के उच्चारण मात्र से विश्व के सभी शेरों के जो अनिवार्य धर्म हैं उनका बोध होता है, जैसे, पशुता तथा शेरत्व। कहने का सारांश यह है कि ऐसे शब्द को जिससे किसी जाति के सभी पदार्थों का बोध हो सामान्य प्रत्यय कहते हैं। सामान्य प्रत्यय भी दो प्रकार का होता , (१) वस्तु बोधक और (२) गुण बोधक। आदमी, जानवर आदि वस्तु बोधक सामान्य प्रत्यय हैं और सत्यता, वीरता आदि गुणवाचक सामान्य प्रत्यय हैं। अब हमें यह देखना है कि इन सामान्य प्रत्ययों का निर्माण तथा विकास बच्चे में क्योंकर होता है।

यदि हम बच्चे के जीवन पर विचार करें तो हमें मालूम होगा कि प्रारंभ में बच्चे का अनुभव अधिकांश समूर्त्त (Concrete) और विशिष्ट (Particular) पदार्थों का ही होता है

क्योंकि वह ऐसे ही पदार्थों से घिरा रहता है। उसके लिये वह समय बहुत ही विचित्र और महत्त्वपूर्ण होता है जब कि वह व्यक्तिगत पदार्थों की सीमा को अतिक्रमण करके उनके सामान्य गुणो को उनसे अलग समझने की परिचेष्टा करता है। सच-मुच उसी समय उसमें वस्तुत: चिंतन प्रक्रिया होती है। इसी अर्थ मे लॉक ने भी मनुष्यो को निम्नकोटि के जानवरो से भिन्न माना है।

टेनी (Taine) का विश्वास है कि बच्चो मे सामान्य प्रत्यय का आविर्भाव भाषा विकास के पश्चात् होता है लेकिन प्रेयर (Preyer) का कथन है कि भाषा का प्रयोग करने के पहले ही बच्चे में सामान्य प्रत्यय का आविर्भाव हो जाता है। पदार्थों का सामान्य गुणो (Common qualities) से अलग करने की योग्यता एक वर्ष के बच्चे में भी देखी जाती है। हाँ, इतना अवश्य है कि यह योग्यता बहुत ही कम मात्रा मे पाई जाती है। वह इस बात को स्वीकार करता है, कि सामान्य प्रत्यय के निर्माण में भाषा सहायक होती है लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भाषा के पहले सामान्य प्रत्यय का आविर्भाव होता ही नही। इसीलिये अपने पक्ष के प्रमाण स्वरूप वह व्यक्त करता है कि यद्यपि गूँगे और बहरे बच्चे तथा वनमानुष (Chimpanzees) भाषा का प्रयोग नही करते तथापि उनमें सामान्य प्रत्यय की योग्यता पाई जाती है। हाँ, इतना अवश्य है कि इनके सामान्य प्रत्यय पूर्ण (Perfect), स्पष्ट (Clear), अमूर्त्त (Abstract) तथा अधिक (Numerous)

नहीं होते। इसलिये सामान्य प्रत्यय का निर्माण (Formation of concept) बच्चो में Language development के पूर्व ही होता है लेकिन भाषा विकास के पश्चात् उसमें क्रमशः विवृद्धि होती है। ढाई वर्ष की अवस्था वाले बच्चो में बहुत कम अंश मे प्रत्याहार (Abstraction) की शक्ति पाई जाती है। जब बच्चा विशिष्ट से सामान्य की ओर अग्रसर होता है तो उसका Generalization अत्यन्त अधूरा (Inaccurate) रहता है क्योंकि बच्चो के प्रत्ययो का सम्बन्ध प्रायः उनके अनुभवगम्य पदार्थों से ही रहता है।

अब सामान्य प्रत्यय की निर्माण प्रक्रिया का वर्णन करने के लिये यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि इसके निम्नांकित प्रधान अंग है—(१) अनेक पदार्थों का अनुभव या निरीक्षण, (२) उन पदार्थों के गुणो का विश्लेषण, (३) उन गुणो की पारस्परिक तुलना (४) समान गुणो का संश्लेषण और (५) उनका नामकरण।

हाँ, तो सामान्य प्रत्यय का अभिप्राय शब्द मात्र नहीं है बल्कि उस शब्द के अर्थ का ज्ञान है। यदि किसी शब्द का अर्थ बच्चा नहीं समझता तो वह उसके लिये सामान्य प्रत्यय नही है बल्कि शब्द मात्र है। सामान्य प्रत्यय में उस शब्द के साथ-साथ उस शब्द के अर्थ का भी ज्ञान होता है। यह अर्थ बोध भी उसी समय होता है जब बच्चा किसी जाति के प्रत्येक पदार्थ का अनुभव या निरीक्षण करता है। सामान्य प्रत्यय निर्माण का यह प्रथम सोपान है।

जब बच्चे को किसी एक पदार्थ का ही अनुभव होता है तो उसे वह एक समष्टि (Unit) के रूप मे जानता है और उसके विशेष गुणो को जानने की जरूरत नहीं समझता। परन्तु जब एक ही जाति के अनेक पदार्थों का अनुभव होता है या अन्य जाति के पदार्थों का अनुभव होता है तो वह उनके सभी गुणो का विश्लेषण करता है। जब वह एकही कुत्ते को देखता है तो उसमे विश्लेषण (Analysis) की क्रिया नहीं होती किंतु ज्यों-ज्यो उसका अनुभव कुत्तो के सम्बन्ध मे परिपक्व होने लगता है त्यो-त्यो उसके गुणो का विश्लेषण होने लगता है।

जब बच्चा एक ही जाति के अनेक पदार्थों के गुणो का विश्लेषण कर लेता है तब उन गुणो की आपस में तुलना भी करता है। इस प्रकार समान गुणो (Similar qualities) को एक श्रेणी में रखता है। फिर जब उसे अन्य जाति के पदार्थों का बोध होता है तो उन गुणों की भी तुलना वह अपने पूर्व अनुभूत पदार्थ के गुणो से करके उनकी समानता और असमानता (Similarity and dissimilarity) का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार वह सभी पदार्थ के गुणों की तुलना करता है।

तुलना करने के पश्चात् वह समान तथा असमान गुणो का वर्गीकरण करता है। जिन पदार्थों में समान गुण विद्यमान रहते हैं उन्हें एक श्रेणी मे रखता है और इस प्रकार उन गुणों का संश्लेषण करता है और इस तरह जिन चीजों के गुण समान (Similar) होते है वे एक साथ मन मे लाए जाते हैं।

नामकरण सामान्य प्रत्यय ज्ञान का अन्तिम साधन है। जब बच्चा अपने अनेक अनुभूत पदार्थों के गुणो का विश्लेषण इत्यादि कर लेता है तब अपने ज्ञान को चिरस्थायी बनाने के लिये उनका शब्दों के द्वारा नामकरण करता है। वस्तुत: शब्द से नाम मात्र ही नही समझना चाहिये बल्कि उसके अर्थों को भी समझना चाहिये। सामान्य प्रत्यय पदार्थ तथा उसके नाम दोनों का बोधक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चे मे सामान्य प्रत्यय का निर्माण तथा उसका विकास कई प्रक्रियाओ के बाद होता है।

Q. 27.—What are the chief characteristics of childrens' thinking? How does a childs' thinking differ from an adult?

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर २५ का और दूसरे भाग के लिये प्रश्न नम्बर २० का उत्तर देखिये।

Q. 28.—Indicate the three levels of the childs' thinking. How do his ideas develop?

यदि चिंतन प्रक्रिया (Thinking) पर विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि इसकी तीन अवस्थाएँ (Levels) होती हैं। प्राय: इन तीनो का वर्णन भी एक साथ ही होता है क्योंकि वस्तुत: हम इन्हे गुणात्मक आधार (On the basis of quality) पर अलग-अलग नहीं कर सकते, कारण कि इनमे गुणभेद (Difference in quality) नहीं होता

अपितु मात्रा भेद (Difference in degree) ही होता है। ये प्रत्ययात्मक चितन (Conception), निर्णय (Judgment) और तर्क (Reasoning) तीनों ही मूल मे ही होते हैं या यों कहिये कि एक ही प्रक्रिया की ये तीन विभिन्न अवस्थाएँ (different stages) है। प्रत्येक सामान्य प्रत्यय (conception) मे अव्यक्त रूप से निर्णय रहता है और इन्हीं निर्णयों के संश्लेषण मे तर्क निहित रहता है जिसके बीजतत्व (elements) सामान्य प्रत्यय ही होते हैं। इसलिये इनमें से किसी प्रक्रिया का भी उदाहरण देना दूसरे को भी व्यक्त करना है।

यदि हम बच्चे के जीवन पर विचार करें तो हमे ज्ञात होगा कि प्रारम्भ मे बच्चे का अनुभव अधिकांश राशिभूत (concrete) और व्यक्तिगत (individual) चीजो का ही होता है क्योंकि वह ऐसे ही पदार्थों से घिरा रहता है। जब उनकी सीमा को पार कर जाता है तब उनके सामान्य गुणो को उनसे अलग समझने की कोशिश करता है। उसी समय उसमें चिंतन प्रक्रिया आरम्भ होती है। टेनी (Taine) का विश्वास है कि बच्चों मे सामान्य प्रत्ययात्मक चिंतन का आविर्भाव भाषा विकास के पश्चात् होता है। लेकिन प्रेयर (Preyer) का कहना है कि इस प्रकार के लिये भाषा विकास एक अनिवार्य (essential) अंग (factor) नहीं है। भाषा इसमे सहायक मात्र ही होती है। हाँ, चिंतन की इस अवस्था मे स्पष्टता (clearness) पूर्णता (perfection) आदि गुण नही रहते। छोटे बच्चो में प्रत्याहार की शक्ति बहुत कम मात्रा मे पाई जाती है। जब बच्चा विशिष्ट

पदार्थ से सामान्य की ओर बढ़ता है तो उसका generalization बहुत ही अधूरा (inaccurate) रहता है क्योंकि बच्चों के प्रत्ययो का सम्बन्ध उनके अनुभवगम्य पदार्थों से ही रहता है। तब इस प्रकार की प्रक्रिया में होता क्या है ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि बच्चा पहले अनेक पदार्थों का निरीक्षण करता है। पुनः उसके सभी गुणों का विश्लेषण करता है। इसके पश्चात् उन गुणों की आपस में तुलना करता है फिर समान गुणों का संश्लेषण के द्वारा वर्गीकरण (classification) करता है। इन्हीं समान गुणो के वर्ग को किसी शब्द से सम्बोधित करता है। यही उसके सामान्य प्रत्ययात्मक चिंतन का स्वरूप है।

सामान्य प्रत्यय पर प्रकाश डालने के बाद अब चिंतन की दूसरी अवस्था निर्णय (Judgment) पर प्रकाश डालना आवश्यक है। निर्णय वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मन दो या दो से अधिक प्रत्ययों या सामान्य प्रत्ययो की तुलना करता है। इसमे दो या दो से अधिक प्रत्ययो, सामान्य प्रत्यय आदि को एक में जोड़ते हैं। "सड़क गीली है" मे दो प्रत्यक्ष अनुभवों, सड़क और गीली को एक साथ जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार "मनुष्य मरणशील प्राणी है" मे कई सामान्य प्रत्ययों को एक में जोड़ दिया गया है।

अब हम यह व्यक्त कर सकते हैं कि बच्चो में निर्णय प्रक्रिया अत्यन्त प्रारंभिक अवस्था मे रहती है। इसका आविर्भाव प्रत्यक्ष (perception) और सामान्य प्रत्यय (conception)

मे भी पाया जाता है। दो महीना का बच्चा अपने माता-पिता को पहचानता है। सात महीने की अवस्था का बच्चा जब कोई चीज पीछे कर दी जाती है तो उसे देखने के लिये अपनी गर्दन भी घुमाता है। दस महीने की अवस्था मे वह किसी चीज के हट जाने के अभाव को भी महसूस करता है। बच्चे के ये सभी व्यवहार उसकी निर्णय प्रक्रिया (Judgment) पर प्रकाश डालते हैं। ये निर्णय पूर्णतः राशिभूत (concrete) और व्यक्तिगत (particular) होते हैं। सामान्य निर्णय प्रक्रिया का आविर्भाव बाद मे होता है। अठारह महीने के बच्चे परिचित (familiar) पदार्थों के चित्र को भी पहचानते हैं। संभावित निर्णय (spoken Judgment) का आविर्भाव बाद की प्रक्रिया है। पहले संभापित निर्णय के लिये दो पदो की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि बच्चा एक ही पद से एक पूरे वाक्य का बोध करता है।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि सामान्य बच्चे (normal children) अपने मानसिक विकास (mental development) के क्रम से कठिन निर्णयो का निर्माण करते हैं किन्तु मन्द-बुद्धि के बच्चे ऐसा नही करते क्योंकि उनमे प्रत्यय तथा सामान्य प्रत्ययो का अभाव रहता है। ऐसे बच्चे निर्णय करने में कभी पूर्णतः सफल नहीं होते।

तर्क (reasoning) चिंतन (thinking) की अन्तिम अवस्था है। इसके द्वारा अनुभूत प्रदत्तो में सम्बन्ध प्रस्थापित किया जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इसके द्वारा

एक या एक से अधिक वर्त्तमान अवयवों के अधार पर एक नये निर्णय पर पहुँचा जाता है। इस प्रकार का तर्क साहचर्य पर निर्भर नहीं करता है,

सभी मनुष्य मरणशील हैं,
राम मनुष्य है,
राम मरणशील है ।

उपर्युक्त प्रक्रिया पर विचार करने से इसमे एकीकरण और साहचर्य प्रक्रिया की प्रधानता प्रतीत होती है। जिस प्रकार निर्णय में संश्लेषण क्रिया होती है उसी प्रकार इसमे भी । इसमें निर्णयों तथा प्रत्ययो का संश्लेषण होता है। तर्क के समय मन अत्यन्त सक्रिय होकर नियन्त्रण, चयन या वहिष्कार के कार्य को करता है। यद्यपि तर्क में सभी प्राथमिक क्रियाएँ होती हैं लेकिन इसका क्षेत्र अन्य प्रक्रियाओं से प्रशस्त होता है। यही कारण है कि इसमे भूत, वर्त्तमान या भविष्य किसी के भी सम्बन्ध में सोचा जाता है। हमे यह भी नहीं भूलना चाहिये कि तर्क निर्णय पर ही निर्भर करता है ।

यहाँ यह भी व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा कि बहुत से मनोवैज्ञानिक इस प्रकार के चितन की सत्ता बच्चो में स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं लेकिन हमे यह नहीं भूलना चाहिये कि दो वर्ष के वाद ही तर्क शक्ति बहुत तीव्र गति से बच्चो मे बढ़ने लगती है जिसके लाखों उदाहरण नित्य प्रति के अनुभव से दिये जा सकते है। अतएव ऐसा अनुमान भ्रमपूर्ण ही समझना

चाहिये। बच्चे या सयाने किसी समस्या (problem) के उपस्थित होने पर ही चिंतन करते है अन्तर सिर्फ इतना ही है कि बच्चो का चितन सरल और सयानों का जटिल होता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि बच्चो मे तर्क होता ही नही। यही बच्चो के चितन की तीन अवस्थाये है। इन तीनों को और भी स्पष्ट करने के लिये हम दूसरी तरह कह सकते है कि बच्चों मे सर्व-प्रथम प्रत्यक्षात्मक (perceptual) चिंतन होता है उसके बाद कल्पनात्मक (Imaginative) तब अन्त मे सामान्य प्रत्ययात्मक चितन की शक्ति आती है। यह शक्ति बच्चे के मानसिक विकास के साथ-साथ बढ़ती जाती है। कहने का सारांश यह है कि प्रत्यक्षात्मक चितन का आधार प्रत्यक्ष ज्ञान ही होता है। यह प्रक्रिया निम्नतम कोटि की होती है जो प्रारंभावस्था मे पाई जाती है। कल्पनात्मक चितन के लिये स्मृतिचित्र की आवश्यकता पड़ती है। इसका आविर्भाव पहली अवस्था के बाद होता है। अन्तिम अवस्था सामान्य प्रत्ययात्मक चितन की है जिसमे प्रत्यक्ष अथवा कल्पना चितन के आधार नहीं होते बल्कि प्रत्यय ही होते हैं। प्रत्ययो का अस्तित्व भी शब्दो पर निर्भर करता है।

इस प्रश्न के दूसरे भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर २६ मे सामान्य प्रत्यय निर्माण तथा उसका विकास देखिये।

Q. 26.—Distinguish between the thinking of adults and that of children.

इसके पहले कि हम सयानो (adults) और बच्चो की

चिन्तन प्रक्रिया के अन्तरों पर प्रकाश डालें यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बच्चे भी अपनी समस्या (problem) को उसी रीति से सुलझाते हैं जिस रीति से सयाने व्यक्ति। वस्तुतः सयानों और बच्चों की चिन्तन प्रक्रिया में प्रकार भेद नहीं बल्कि मात्रा भेद है। मानसिक विकास चिन्तन सम्बन्धी जन्म से प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः होता है। दोनों ही में चिन्तन प्रक्रिया का आविर्भाव किसी समस्या के उपस्थित होने पर ही होता है और दोनों ही उस समस्या का समाधान (solution) प्रयत्न और भूल प्रक्रिया (by trial and error) के ही द्वारा करते हैं। तर्क (reasoning) की योग्यता क्रमशः विकसित होती है और ऐसा देखने में आता है कि अधिक अवस्था वाले बच्चे छोटे बच्चों की अपेक्षा अधिक जटिल प्रश्नों को हल करते हैं। तथापि हम सयानों और बच्चों के चिन्तन में निम्नाङ्कित अन्तर व्यक्त कर सकते हैं।

(१) तीन से सात वर्ष की अवस्था वाले बच्चों पर जो चिन्तन सम्बन्धी प्रयोग किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि बच्चों का चिन्तन प्रायः स्वकीय (egocentric) होता है। इसका तात्पर्य यह है कि बच्चे अपने ही सम्बन्ध में सोचते हैं दूसरे व्यक्ति अथवा पदार्थ के सम्बन्ध में नहीं। जिस प्रकार उनकी अन्य क्रियायें किसी आवश्यकतावश होती हैं उसी प्रकार यह भी। जब बच्चे दूसरे बच्चों से बात करते हैं तो उस समय भी वह अपने ही सम्बन्ध में सोचते हैं, दूसरों के नहीं। लेकिन ऐसा तीन से सात वर्ष की ही अवस्था वाले बच्चों में पाया जाता है।

इसे हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि बच्चों का चिन्तन आत्मगत होता है। परन्तु सयानों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता, उनका चिन्तन किसी प्रकार का भी हो सकता है। या यों कहिये कि सयाने अपने से अलग पदार्थों के सम्बन्ध मे ही अधिक सोचते है। इसलिये इनकी चित्तवृत्ति (attitude) चिन्तन प्रक्रिया के समय विधेयात्मक (objective) होती है।

बच्चों की चिन्तन प्रक्रिया मे तार्किक एकरूपता (logical consistency) का अभाव रहता है क्योंकि उनका मानसिक विकास परिपूर्ण नहीं रहता है। इसीलिये उनके चिन्तन मे प्रयत्न और भूल (trial and error) अधिक संख्या मे होता है और संयोगवश ही किसी समस्या का सामाधान होता है। उन्हे चिन्तन करने में अधिक प्रतिक्रियाओं को करना पड़ता है। लेकिन सयानों के चिन्तन मे तार्किक एकरूपता रहती है, क्योंकि उनका मानसिक विकास परिपूर्ण (perfect) रहता है। किसी समस्या को समाधान करने में उन्हे भी प्रयत्न और भूल का आश्रय लेना पड़ता है लेकिन बच्चों से कम। उनकी प्रतिक्रिया की संख्या भी बच्चों से कम ही होती है।

बच्चे अपने चिन्तन में निर्जीव पदार्थों को भी सजीव ही समझते हैं। इसीलिये कुछ मनोवैज्ञानिकों ने उनके चिन्तन को animistic कहा है। ये सोचते हैं कि चन्द्रमा और सूर्य आदि भी प्राणी ही है क्योंकि ये भी चलते हैं। लेकिन सयाने जड़ पदार्थों को प्राणी नही समझते।

बच्चों का चिन्तन अत्यन्त सरल प्रकार (simple type) का होता है अर्थात उनके चिन्तन मे जटिलता नही रहती। वे सिर्फ उन्हीं चीजों के सम्बन्ध में सोचते हैं जो उनके लिये बिल्कुल सुगम होते हैं। परन्तु सयानो का सोचना केवल साधारण कोटि का ही नहीं होता उनमें जटिलता बहुत ही अधिक रहती है। वे उन चीजो को भी सोचते हैं जो उनके सामने मौजूद नही रहती है।

दूसरे शब्दो में हम यह कह सकते हैं कि बच्चो का सोचना प्रत्यक्षात्मक या राशिभूत (concrete) होता है वे उन्ही पदार्थों का चिन्तन करते हैं जिन्हे वे समझते हैं और जो सामने उपस्थित रहते है। कहने का अभिप्राय यह है कि बच्चे अनुभव के परे नहीं सोचते। किन्तु सयानो का सोचना सामान्य प्रत्ययात्मक विशेष रूप से होता है। वे गुण वाचक विषयो का भी चिन्तन प्रत्ययों के सहारे करते है। ऐसा उनके मानसिक विकास की पूर्णता के ही कारण होता है।

चिन्तन के समय बच्चे बोलते रहते हैं। उनका चिन्तन अधिकांश भाषा के साथ ही चलता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि यदि उन्हे धीरे से चिन्तन करने के लिये कह दिया जाय तो उनकी चिन्तन प्रक्रिया ही रुक जाती है। जब बच्चे गणित के प्रश्न को हल करते हैं तो बोलते भी हैं। परन्तु सयानो का चिन्तन ऐसा नही होता। कभी-कभी वे भी सोचते समय सम्भाषण करते हैं लेकिन वे सम्भाषण बहुत ही मन्द तथा अव्यक्त होते हैं जो प्रयोग (experiments) करने पर ही जाने

जा सकते हैं। फिर भी वे बच्चों की अपेक्षा बहुत ही कम सम्भाषण करते हैं।

किसी समस्या के उपस्थित होने पर बच्चे समस्या को कम और परिस्थिति (situation) को अधिक सोचते हैं लेकिन सयाने परिस्थिति को नही बल्कि समस्या को ही सोचते है। प्रायः ये ही प्रधान अन्तर बच्चो और सयानो के चिन्तन मे हैं।

यहाँ यह भी व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा कि बच्चो और सयानो मे ये अन्तर उनके मानसिक विकास के ही कारण पाए जाते हैं। इन दोनो के चिन्तन में प्रकार भेद (difference in kind) नही होता बल्कि मात्रा भेद (difference in degree) ही होता है क्योंकि बच्चे भी चिन्तन के द्वारा किसी निर्णय पर उसी प्रकार पहुँचते हैं जिस प्रकार कि सयाने व्यक्ति।

CHAPTER 7

LEARNING

(सीखना)

Q. 30.—Children learn by doing. Explain this statement fully.

'बच्चे क्रियात्मक सीखते हैं' (children learn by doing) की व्याख्या करने के पहले यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि सीखने के कई सिद्धान्त (theories) हैं, जैसे, सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन द्वारा सीखना (learning by conditioned reflex), अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखना (learning by insight) और क्रियात्मक सीखने का सिद्धान्त (learning by trial

and error)। लेकिन यहाँ हमे क्रियात्मक सिद्धान्त की ही व्याख्या करनी है।

बच्चे किसी प्रतिक्रिया (response) को करके सीखते हैं, का मतलब यह है कि जब वे किसी नवीन प्रतिक्रिया को करना सीखते हैं तो उनमें उस समय बुद्धि (intelligence) काम नहीं करती बल्कि किसी परिस्थिति (situation) के उपस्थित होने पर वे अनायास (random) व्यवहार (behaviour) करना प्रारंभ कर देते हैं। उन्हीं अनायास व्यवहारो के करने से वे समुचित प्रतिक्रिया करना सीख जाते हैं। बच्चे किसी काम को करके क्योंकर सीखते है इसे अच्छी तरह समझने के लिये एक दो उदाहरणों का देना श्रेयस्कर होगा।

मान लीजिये बच्चा कमीज पहने हुए हैं और उसे बहुत गर्मी मालूम होती है। वह चाहता है कि उस कमीज को अपने शरीर से उतार कर अलग कर दे। लेकिन बटन बन्द है और वह यह भी नहीं जानता है कि बटन को कैसे खोला जाता है। तथापि गर्मी से वह इस प्रकार बेचैन है कि वह कमीज को शरीर से फेंकना चाहता है। इसलिये वह कभी अपनी कमीज की बाँह को खींचता है, कभी उसे नीचे को खींचता है और कभी कमीज की गर्दन को इधर-उधर करता है। उसका ऐसा ही व्यवहार बार-बार होता है। संयोगवश उसका हाथ बटन के छेदों के करीब पड़ता है और बटनवाले पार्श्व को जोर से खींचता है और सभी बटनें सहसा खुल जाती हैं। फिर भी उसका व्यवहार कमीज को खींचने का प्रचलित रहता है और

वहुत इधर उधर करने पर कमीज को शरीर से निकालने में समर्थ होता है। इसी प्रकार जरूरत पड़ने पर वह कमीज निकालने के लिये भविष्य मे भी अनियमित व्यवहार प्रदर्शित करता है और कई बार ऐसा करने पर वह कमीज को शरीर से निकालना सीख जाता है।

इसी तरह सायकिल पर चढ़ने का ढंग सीखने के लिये लड़का कभी हैंडिल को इधर घुमाता है और कभी उधर। कभी चलाने के बदले ब्रेक को ही रोक देता है तो कभी दाएँ के बदले बाँए घुमा देता है। बार-बार ऐसा करने पर वह सायकिल पर चढ़ना सीख जाता है।

अक्षर लिखने का ढग सीखने को ही लीजिये। जब बच्चे को पहले-पहल क, ख, ग आदि लिखने का ढंग सिखलाया जाता है तो वह शुद्ध-शुद्ध लिखना प्रारम्भ मे ही नहीं सीख जाता। वह पहले-पहल टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों को ही बनाता है और वैसा ही करते-करते उसको क, ख, ग आदि लिखने का ढंग मालूम हो जाता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि बच्चों का सीखना प्रायः क्रियात्मक होता है। वे किसी भी प्रतिक्रिया को करने के ही द्वारा सीखते हैं क्योंकि बाल्यकाल में बुद्धि परिपूर्णता को प्राप्त नहीं रहती। इसलिये उनमे विचार शक्ति बहुत कम अंश मे काम करती है। वे अपने वातावरण मे किसी को कोई व्यव-हार करते हुए देखते हैं और उसे करना प्रारम्भ कर देते है। लेकिन तुरन्त ही उनके उस व्यवहार मे परिपूर्णता (perfect

ion) नहीं आती है। बल्कि बार-बार अनियमित व्यवहार के करने से ही समुचित व्यवहार करना आ जाता है। ज्यों-ज्यों समय बढ़ता जाता है त्यों-त्यों अनुचित और दोषपूर्ण व्यवहारों में कमी होती जाती है और उचित व्यवहार की परिपुष्टि होती जाती है।

इस सिद्धान्त को विश्वजनीन (universal) बनाने के लिये थार्नडाइक (Thorndike) ने तीन नियमों (laws) का प्रतिपादन किया है। अभ्यास नियम (law of exercise) के अनुसार यदि किसी प्रतिक्रिया को बार-बार दोहराया जाय तो उस प्रतिक्रिया को करना सीख लिया जाता है। लेकिन यह नियम सभी स्थलों पर लागू नहीं होता। फल नियम (law of effect) के अनुसार जिस प्रतिक्रिया को करने से सन्तुष्टि होती है उसे बच्चे शीघ्र सीख जाते हैं और जिसके करने से असंतुष्टि होती है उसे नहीं सीखते। तत्परता का नियम (law of readiness) के अनुसार बच्चे उसी प्रतिक्रिया को सीखते हैं जिसको सीखने के लिये वे तैयार रहते हैं।

यद्यपि इन नियमों का प्रतिपादन थार्नडाइक ने अपने क्रियात्मक सिद्धान्त (theory of trial and error) को पुष्ट करने के लिये किया है लेकिन ये ही नियम उसके सिद्धान्त को खण्डित भी करते हैं।

यदि बच्चों के सीखने की पद्धति (method) पर गम्भीर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि प्रायः बच्चे बहुत-सी प्रतिक्रियाएँ करने के द्वारा ही सीखते हैं। उनके करने में गल-

तियाँ भी होती हैं और कालक्रम मे उनका सुधार और संशोधन भी होता है। परन्तु इसका यह मतलब नही कि उनका सीखना एकमात्र क्रियात्मक ही होता है। हमलोगों का नित्यप्रति का अनुभव यह प्रमाणित करता है कि बच्चे बहुत कुछ सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (conditioned response) और अन्तर्दृष्टि (insight) द्वारा सीखते है। वाटसन ने बच्चो पर प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया है कि बच्चों का सीखना सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनात्मक होता है। एक बच्चा जो आवाज से नही डरता था उस पर प्रयोग करने पर देखा गया कि यदि आवाज का सम्बंध किसी भयावह उत्तेजना से कर दिया जाय तो बच्चा उससे डरने लगता है। वाटसन का तो यहाँ तक कहना है कि बच्चो का सीखना केवल सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के ही द्वारा होता है। इसी प्रकार बच्चों में अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने का भी अभाव नही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांशतः बच्चे किसी प्रतिक्रिया (response) को करके ही सीखते है। लेकिन यह कथन उनके सम्बन्ध में सर्वांशतः ठीक नहीं है क्योंकि बहुत-सी प्रतिक्रियाएँ वे सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के द्वारा अथवा अन्तर्दृष्टि के भी द्वारा सीखते है।

Q 31.—Explain the different methods employed by children in learning new responses.

नवीन प्रतिक्रियाओं (new responses) को सीखने के लिये बच्चे निम्नांकित पद्धतियो का अवलम्बन लेते हैं। यो तो बहुत से मनोवैज्ञानिक ऐसे है जो सीखने में केवल एक पद्धति

(method) पर ही जोर देते हैं परन्तु वस्तुतः बच्चे क्रियात्मक पद्धति (trial and error method) अनुकरणात्मक पद्धति (imitative method) अन्तर्दृष्ट्यात्मक पद्धति (insightful method) और सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनात्मक पद्धति (condition reflex method) मे से सभी को कहीं न-कहीं अपनाते है। यहाँ हम इन पद्धतियो पर क्रमशः प्रकाश डालेंगे।

बच्चे बहुत-सी प्रतिक्रियाएँ (responses) क्रियात्मक (trial-error) पद्धति के द्वारा सीखते हैं। चलना, सायकित्त चलाना तथा दौड़ना आदि प्रतिक्रियाएँ करके ही सीखी जाती हैं। जब बच्चा चलना सीखता है तो उसे सीखने का ढंग प्रारंभ करते ही नहीं आ जाता है बल्कि चलना सीखने के लिये वह कई बार इधर-उधर गिरता है, पैर उठाने के बदले हाथ उठाता है आदि। इसी प्रकार कई तरह का अनायास (random) व्यवहार (behaviour) वह प्रदर्शित करता है तब कहीं जाकर उसे ठीक से चलना आता है। जब छोटे-छोटे बच्चे क, ख और ग आदि लिखना सीखते हैं तो वे इसी क्रियात्मक पद्धति को अपनाते है। अन्त में बहुत-सी गलतियो के बाद तो उन्हे शुद्ध-शुद्ध लिखना आता है। बहुत से मनोवैज्ञानिक तो बच्चो को सीखने की यही एक मात्र पद्धति मानते हैं और इसकी परिपुष्टि के लिये उन्होंने कई मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी किये हैं जो उनके ही पक्ष में है। लेकिन इन प्रमाणो के होते हुए भी हमे यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह पद्धति सभी स्थलो पर काम में नहीं लाई जा सकती।

बच्चो के सीखने की दूसरी पद्धति (method) अनुकरण (imitation) की है। अर्थात बहुत सी प्रतिक्रियाएँ (responses) बच्चे अनुकरण के द्वारा भी सीखते है। अनुकरण का मतलब ही होता है किसी को देखकर उसी के ऐसा करना। मान ले, कोई सयाना आदमी चचा शब्द का उच्चारण करता है। बच्चा भी उसे चचा कहते हुए किसी को देखता है और वह भी उसे चचा कहना सीख जाता है। प्राय: बच्चों मे प्रणाम, नमस्कार आदि करने की प्रतिक्रियाएँ अनुकरणात्मक ही होती है। लड़को तथा बच्चो मे अनुकरण करने की शक्ति विशेष रूप में रहती है इसलिये वे जैसा अपने बड़ो को करते देखते हैं वैसा ही अपने करना भी प्रारम्भ कर देते हैं। इसलिये भावुको को चाहिये कि वे वैसा ही कार्य बच्चो के सामने करें जो सामाजिक दृष्टिकोण से श्रेयस्कर हो अन्यथा बच्चो को बिगड़ने का अवसर मिल जाता है।

किसी नई प्रतिक्रिया को सीखने के लिये बच्चे अन्तर्दृष्ट्यात्मक पद्धति का भी आश्रय लेते है लेकिन छोटे बच्चो मे इसकी शक्ति बहुत ही कम होती है। यहाँ अनुकरण और अन्तर्दृष्टि के अन्तर को भी व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा। जब बच्चे अनुकरण के द्वारा सीखते हैं तो उस समय केवल उसी प्रतिक्रिया को करना सीखते हैं जो किसी को करते देखते हैं। लेकिन अन्तर्दृष्टि के द्वारा जब सीखते है तब ऐसा काम भी करना सीख लेते है जिसे वे न पहले किये रहते है और न किसी को किये हुए देखे रहते हैं । कोहलर (Kohler) ने

बहुत-से बच्चों पर प्रयोग करके यह प्रमाणित करने की कोशिशे की है कि बच्चों का सीखना अन्तर्दृष्ट्यात्मक ही होता है। लेकिन हमलोग इससे सहमत नहीं हैं क्योंकि सभी स्थलों पर बच्चे इसी पद्धति को नहीं अपनाते हैं। सच्ची बात तो यह है कि इस पद्धति द्वारा सीखने के लिये बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है परन्तु बच्चों की बुद्धि (intelligence) पूर्णतः विकसित नहीं रहती है।

बच्चों के सीखने की अन्तिम पद्धति (method) सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन (conditioned response) की है। यद्यपि यह पद्धति विशेष रूप से चेतन मन से नियन्त्रित नहीं कही जा सकती तथापि वाटसन का कहना है कि बच्चे सभी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन के ही द्वारा सीखते हैं। सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन का मतलब होता है किसी प्रतिक्रिया का सम्बन्ध किसी अभिनव (new) और अस्वाभाविक उत्तेजना से हो जाना। मान लीजिये, कोई बच्चा साँप से डरता है और यदि उसके डरने का सम्बन्ध आवाज से कर दिया जाय तो आवाज से डरना उसका सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तनात्मक होगा। वाटसन का कहना है कि बच्चा अपने जीवन में सभी कुछ इसी पद्धति से सीखता है। इस सम्बन्ध मे अनेकों प्रयोग करके यह दिखला दिया गया है कि बच्चे किसी चीज को चाहना (like) न चाहना (dislike) डरना और भय करना इसी पद्धति से सीखते हैं। हमारी सभी आदतो का आधार सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन ही है। बोलना और तरह-तरह की भाषाएँ भी इसी पद्धति के द्वारा सीखी जाती हैं।

इस तरह हम देखते है कि बच्चे नई प्रतिक्रियाओं को इन्हीं चार पद्धतियो मे से किसी एक के द्वारा सीखते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक ही प्रतिक्रिया को सीखने के लिये उपयुक्त सभी पद्धतियो का आश्रय ले। किसी स्थल पर कोई एक ही विशेप पद्धति काम करती है।

Q. 32—What are the principal ways of child's learning? What are the effects of practice in a child's learning?

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ३१ का उत्तर देखिये।

चूँकि बच्चो का सीखना (learning) प्रायः क्रियात्मक या अनुकरणात्मक (trial-error or imitative) होता है इसलिये उनके सीखने मे अभ्यास (exercise) का विशेष महत्व रहता है। जब वे बोलना सीखते हैं तो प्रारंभ मे ही वे शुद्ध-शुद्ध उच्चारण नही करते बल्कि बार-बार उसी को दोहराने से उन्हे शुद्ध-शुद्ध बोलना आ जाता है। चलना भी उनका अभ्यास के ही जरिए ठीक होता है। वे बार-बार चलने और दौड़ने की कोशिश करते है तरह-तरह की गलतियाँ होती है, किंतु जैसे-जैसे दोहराने (repetition) की सख्या बढ़ती जाती है वैसे-वैसे गलतियों की संख्या कम होती है और अन्त में गलतियों का नामोनिशान भी नही रह जाता है। लिखना सीखने में भी अभ्यास का कम हाथ नहीं। जब बच्चे अक्षरो

को लिखना सीखते है तो उन्हे शुद्ध-शुद्ध लिखना नहीं आता और 'क' लिखने के बदले कभी केवल एक वृत्त (circle) बना देते हैं तो कभी एक खड़ी और पड़ी रेखा ही खींच देते हैं। लेकिन जब बार-बार लिखने की कोशिश करते हैं तो अन्त मे वे उसे शुद्ध-शुद्ध लिखने लगते हैं। इसी तरह वे जब सायकिल चलाना सीखते हैं तो पहले बहुत से अनियमित व्यवहार (random behaviour) करते हैं किन्तु धीरे-धीरे अनियमित व्यवहारों की संख्या कम होती जाती है और अन्त मे उन्हे ठीक-ठीक सायकिल चलाना आ जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि बच्चों के सीखने (learning) मे अभ्यास (exercise) का बहुत अधिक हाथ रहता है। लेकिन इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि अभ्यास करते समय ठीक प्रतिक्रिया (right response) को बार-बार दोहराना (repetition) अनिवार्य है। क्योंकि यदि बार-बार गलतियो को ही दोहराया जाय तो उचित प्रतिक्रिया कैसे सीखी जा सकती है? उन गलतियो में उचित प्रतिक्रिया (right response) का रहना जरूरी है। तभी अनियमित व्यवहारो (random behaviour) का बहिष्कार करके उचित प्रतिक्रिया को अपनाया जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि सभी स्थलो पर अभ्यास नियम काम नहीं करता। बच्चे पहले-पहल किसी भयावह शब्द से डर सकते हैं या वैसे स्थान पर सोने में कठिनाई हो सकती है किन्तु बार-बार यदि वह शब्द होता रहा तो अभावात्मक (negative) प्रभाव (effect) पड़ता है। ज्यो-ज्यो आवाज

दोहराई जाती है त्यो-त्यो उसी आवाज मे सोने के अभ्यासी हो जाते हैं।

Q. 33.—Describe the different factors in the child's learning.

यो तो बच्चो के सीखने (learning) में बहुत से अंग (factors) काम करते हैं लेकिन यहाँ हम प्रमुख अंगो पर ही सत्तेप रूप में प्रकाश डालेंगे।

(१) परिपक्वता तथा विकास (maturation and development)—

बच्चो का सीखना अधिकांश उनके शारीरिक और मानसिक विकास और परिपक्वता पर निर्भर करता है। बहुत-सी शारीरिक क्रियाएँ (motor activities) ऐसी हैं जिन्हें लाख चेष्टा करने पर भी वे एक निश्चित काल के पूर्व नहीं सीख सकते। टाइप का सीखना या सायकिल पर चढ़ना हम छोटे-छोटे बच्चे को नहीं सिखला सकते। इसके लिये तो शारीरिक परिपक्वता की जरूरत है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया गया है कि बहुत प्रकार की प्रतिक्रियाएँ शारीरिक और मानसिक विकास पर निर्भर करती हैं। जब तक बच्चे का मानसिक विकास पूर्णत: नहीं होता तब तक वह अर्थमेटिक के कठिन प्रश्नो को हल करना नही सीख सकता। इसीलिये स्कूलो मे बच्चो की योग्यतानुसार ही तो उनका पाठ्यक्रम रखा जाता है।

(२) सीखने की इच्छा (motive to learn)—

किसी चीज को सीखने के लिये यह आवश्यक है कि बच्चा उसे सीखने की इच्छा करता हो। इच्छा और रुचि के बिना कुछ सीखना कठिन है। जब हम या बच्चे किसी तरह की अन्तरावयव (organic) आवश्यकता (need) का अनुभव करते हैं तो उस अभाव को दूर करने की कोशिश करते हैं। बच्चे जब भूख का अनुभव करते हैं तभी वे खाने का ढंग भी सीखते है। प्यास लगने पर ही तो पानी पीने का ढग सीखा जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि सीखने के लिये तैयारी (readiness) बहुत ही आवश्यक अंग है। यदि कोई चीज सिखलाई जाय और बच्चे उसे सीखने के लिये तैयार न हों तो वे कदापि नहीं सीख सकते। इसीलिये स्कूल और कॉलेजों में अध्यापक इस प्रकार से अध्यापन करना शुरू करते हैं कि सभी लड़के उसे सीखने क लिये तैयार हो जाते हैं। प्रयोग करने से पता चला है कि सीखने के लिये प्रेरणा (motive) का होना बहुत जरूरी है।

(३) परिणाम अथवा संतुष्टि (result or satisfaction)—

जिस प्रतिक्रिया से बच्चे को संतुष्टि होती है अथवा किसी प्रकार का पुरस्कार (reward) मिलता है उस प्रतिक्रिया को करना वह सीख जाता है। जिस प्रतिक्रिया (response) के करने पर बच्चे को दण्ड मिलता है या और किसी प्रकार का असंतोष होता है तो उसे वह नहीं सीखता है। प्रयोगों के करने से ऐसा

मालूम होता है कि यदि बच्चा किसी नए काम को सीखे और सीखने के तुरत बाद उसके माता-पिता मिठाई दें तो वह बच्चा उस काम को बहुत अच्छी तरह सीख लेता है। किन्तु यदि उसी बच्चे को किसी काम के करने के बाद दण्ड मिलता है तो उसे वह नही सीखता है। इसीलिये अब बच्चो को क्लास मे दण्ड देने का विधान हटा दिया गया है।

(४) अभ्यास (exercise or use)—

जिस प्रतिक्रिया को बार-बार बच्चा करता है उस प्रतिक्रिया को करना वह सीख जाता है, परन्तु यदि उसका अभ्यास न करे तो वह उसे बहुत शीघ्र भूल भी जाता है। यह अंग बच्चो के सीखने में बहुत सहायक होता है लेकिन हमे यहाँ यह याद रखना जरूरी है कि अभ्यास उचित (right) प्रतिक्रिया का ही करना चाहिये, अनुचित (wrong) का नहीं। फिर भी डनलप का कहना है कि जैसे अभ्यास के द्वारा हम किसी काम को करना सीख जाते हैं वैसे ही अभ्यास से वह प्रतिक्रिया भुलाई भी जा सकती है। इस पक्ष मे कई मनोवैज्ञानिक (Psychological) प्रमाण (evidence) मौजूद हैं। अतएव यह अंग सभी स्थलों पर लागू नहीं होता।

(५) सीखने का वातावरण और समय (Environment and time)—

बच्चे को किसी नई प्रतिक्रिया को सिखलाने के लिये यह जरूरी है कि उसका वातावरण सीखने के अनुरूप हो। यदि हम बच्चे को पहाड़ा सिखलाना चाहते हैं तो इसके लिये

जरूरी है कि हम उसी समय उसे पहाड़ा सिखलावें जब अन्य बच्चे भी पढ़ने का काम करते हो। ऐसा नहीं होना चाहिये कि जब सब बच्चे खेलने या सोने मे मग्न हो तो हम केवल एक बच्चे को पहाड़ा सिखलाने का काम करें। ऐसा करने पर बच्चे का मन पहाड़ा सीखने पर नहीं लगेगा और परिणामतः वह कुछ भी नहीं सीख सकेगा।

सिखलाने के लिये यह भी ध्यान देने योग्य है कि कोई काम बच्चे को लगातार नहीं सिखलाना चाहिये क्योंकि लगातार काम करने से बच्चा बहुत जल्द थक जाता है। उसका मन भी उस काम मे नहीं लगता है और अन्त मे वह कुछ भी सीखने में समर्थ नहीं होता है। अतएव हमे बच्चों के सीखने के समय पर बराबर ध्यान रखना चाहिये और उन्हे कोई चीज लगातार सीखने के लिये विवश नहीं करना चाहिये।

(६) सम्बद्धता अथवा एकत्व (Integration)—

किसी प्रतिक्रिया को सीखने अथवा किसी कविता पाठ को सीखने या मशीन को चलाने का काम सीखने के लिये यह आवश्यक है कि बच्चे को प्रत्येक अंशो (Parts) का सम्बन्ध एक दूसरे से बतलाया जाय। ऐसा करने पर बच्चे एक दूसरे का सम्बन्ध जानने के कारण उसे शीघ्र सीखने मे समर्थ होते हैं और ऐसा न करने के कारण उसे सीखने मे असमर्थ हो जाते है। कहने का अभिप्राय यह है कि बच्चो को जो कुछ बतलाया जाय उसकी व्याख्या उनसे तार्किक आधार (Logical reasoning) पर

किया जाय ताकि वे उसे समझ जायँ। सीखने के लिये यह अंग निहायत जरूरी है।

इन अंगो के अतिरिक्त बच्चों के सीखने क कुछ और भी अंग (Factors) हैं लेकिन उनका वर्णन हम यहाँ नहीं करेंगे, क्योकि वे उतने प्रधान अंग नहीं है।

CHAPTER 8

INTELLIGENCE

(बुद्धि या मनीषा)

Q. 34.—What is intelligence ? How is it measured ? State the uses of the measurement of intelligence.

बुद्धि अथवा मनीषा (Intelligence) की व्याख्या और परिभाषा भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको ने अपने-अपने ढग से की है। इसे अच्छी तरह से समझने के लिये हम पहले कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओ का उल्लेख करेंगे तत्पश्चात् अपना दृष्टिकोण व्यक्त करेंगे।

कुछ लोगों का सिद्धान्त है कि मनीषा (Intelligence) शिक्षणशीलता की योग्यता है (Capacity to learn)। परन्तु यदि इस परिभाषा पर विचार किया जाय तो यह परिभाषा सर्वाङ्ग सुन्दर नही कही जा सकती। यद्यपि शिक्षणशीलता से कुछ अंश तक बुद्धि पर प्रकाश पड़ता है लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि शिक्षणशीलता मात्र की ही योग्यता बुद्धि है।

स्टर्न (Stern) महोदय के अनुसार बुद्धि व्यक्तिविशेष की वह सामान्य योग्यता है जिसके प्रसाद से वह अपने जीवन

की समस्याओं को सुलझाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार अभिनव परिस्थिति में अभि-योजनशीलता की योग्यता को ही बुद्धि या मनीषा कहते हैं। इन दोनों परिभाषाओ को दृष्टिकोण में रखकर हम यही कह सकते हैं कि बुद्धि मे शिक्षणशीलता की योग्यता भी निहित रहती है।

विने (Binet) महोदय का सिद्धान्त है कि बुद्धि वस्तु-बोध (Comprehension) आविष्कार (Invention) अभि-संधान (Direction) और विवेचना (Criticism) इन्ही चार पदो में निहित है। इसकी पुष्टि के लिये उन्होंने बालक और प्रौढ़ व्यक्तियो की मानसिक योग्यताओ में अन्तर प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

आज से कुछ दिन पूर्व अमेरिका के कुछ पंडितों ने बुद्धि की व्याख्या अपने-अपने ढंग से करने की कोशिश की। यहाँ उन पर प्रकाश डालना भी अप्रासंगिक न होगा।

कोलविन (Colvin) महोदय का कथन है कि वह मनुष्य बुद्धिमान है जो कि वातावरण में अपने को अभियोजित करना सीख लिया है या सीख सकता है।

हेगार्टी Haggerty) महोदय का कहना है कि जटिल मानसिक क्रियाओं का समुदाय ही बुद्धि है लेकिन वे मानसिक क्रियाओं में से संवेग (Emotions) मूलप्रवृत्ति (Instincts) व्यावसायिक क्रिया (Will activities) और चरित्र और शील गुण (character and traits) को अलग कर देते हैं।

टरमन (Terman) महोदय के अनुसार वही मनुष्य बुद्धिमान है जो अमूर्त-चिंतन (Abstract thinking) करने मे समर्थ है।

थार्नडाइक (Thorndike) के विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि बुद्धि के चार अनिवार्य अंग (Aspects) धरातल (Altitude or level), विस्तार (Range or width), व्याप्ति (Extent or area) और गति (Speed) है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य बुद्धिमान होता है वह एक बुद्धि विहीन व्यक्ति की अपेक्षा किसी कठिन कार्य को पर्याप्त मात्रा में अच्छी तरह शीघ्रता से कर सकता है।

इसी प्रकार डीयरबॉर्न और बेलार्ड (Dearborn and Bellard) इत्यादि ने भी बुद्धि की व्याख्या अपने ढग से की है। लेकिन उन पर प्रकाश न डालकर स्पीयरमैन (Spearman) और थार्नडाइक (Thorndike) के सिद्धान्तों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालना आवश्यक समझते है।

स्पीयरमैन का सिद्धान्त है कि बुद्धि की व्याख्या जिस तरह से भी की जाय लेकिन इसके दो पहलू होते है। एक तो सामान्य बुद्धि होती है जिसे अँगरेजी में जी (G) कहते हैं और एक विशिष्ट बुद्धि होती है जिसे स (S) कहते हैं। सामान्य बुद्धि मनुष्य के सभी कामो में रहती है लेकिन विशिष्ट बुद्धि एक ही काम मे सहायक होती है। परन्तु थार्नडाइक का सिद्धान्त है कि बुद्धि एक नहीं अपितु कई हैं और यह एक प्रकार की मानसिक योग्यता है।

अब इन विभिन्न सिद्धान्तो और परिभाषाओं पर प्रकाश डालने के बाद यहाँ यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बुद्धि हमारे दृष्टिकोण से वह मानसिक योग्यता है जिसके प्रसाद से मनुष्य अपनी अभिनव परिस्थिति मे अभियोजित करने में समर्थ होता है। हाँ, स्पीयरमैन का सामान्य बुद्धि और विशिष्ट बुद्धि का सिद्धान्त भी इस परिभाषा को खण्डित नही करता क्योंकि सामान्य बुद्धि तो सभी अवस्थाओ मे काम करती है।

अब बुद्धि माप के साधनो पर प्रकाश डालने के पहले यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बुद्धि माप के बहुत से साधन और तरीके मौजूद हैं। उनमें से कुछ तरीके तो वैज्ञानिक है और कुछ अवैज्ञानिक भी हैं। लेकिन हम यहाँ बहुत कम पद्धतियो पर ही प्रकाश डालेंगे।

साधारण तरीका बुद्धि मापने का व्यक्ति विशेष अथवा बच्चे के व्यवहार का अवलोकन करना है। हम बच्चे के व्यवहार का सूक्ष्मतया निरीक्षण करके उसकी बुद्धि का पता लगा सकते हैं।

दूसरा तरीका बुद्धि जानने का वार्तालाप करना है और बात के क्रम को देखकर तो बुद्धि का पता लगाया जाता है।

इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे पाठशाला के विद्यार्थियों की बुद्धि माप उनके परीक्षाफल से की जाती है। किन्तु उपर्युक्त तीनों तरीके बुद्धि माप के पूर्णतः दोष पूर्ण हैं क्योंकि वस्तुतः इस प्रकार बुद्धि का ज्ञान प्राप्त करना प्रामाणिक नहीं होता।

इसके अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि मापने का

प्रयास संवेदना के आधार पर किया है लेकिन यह पद्धति भी पूर्णतः दोषपूर्ण है। क्योंकि प्रायः ऐसा देखने में आता है कि जो बुद्धिमान नहीं है वह बुद्धिमान की अपेक्षा संवेदना की शक्ति अधिक मात्रा मे रखता है।

आज से ४५ वर्ष पहले बिने महोदय ने बुद्धि माप के लिये विभिन्न अवस्था वाले बच्चो के लिये विभिन्न प्रकार की प्रश्नावलियो का उत्तर प्राप्त करके बच्चो की बुद्धि की माप की। परन्तु कुछ दिनो बाद इसमे भी कुछ दोष पाये गये।

इसलिये टरमेन महोदय ने बीने की परीक्षा पद्धति में कुछ सुधार लाये और उन्होंने ऐसा किया कि बच्चा जितने प्रश्नो का उत्तर देता था उतने पर ही उसे अंक प्राप्त होते थे और उसकी बुद्धि की माप हो जाती थी।

बुद्धि मापने के लिये इबिघास महोदय (Ebbinghaus) की वाक्यपूर्त्ति परीक्षा पद्धति (completion test) भी काम मे लाई जाती है। लेकिन इससे भी पूर्णतः बुद्धि की जाँच नहीं होती है। अब हम वर्त्तमान मे प्रचलित बुद्धि माप परीक्षा पद्धतियो पर प्रकाश डालेंगे।

(१) शिशु परीक्षा पद्धति (baby test) —

इस परीक्षा पद्धति के द्वारा बच्चे की ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक शक्तियो की जाँच होती है, जैसे, किसी पदार्थ को दिखा कर उसके नेत्र की गति का निरीक्षण करना, किसी चीज को पकड़वाना अथवा हाथ या मस्तक को सीधा रखवाना आदि।

(२) विकासात्मक माप परीक्षा पद्धति (developmental scales)—

इस पद्धति के द्वारा बच्चे के व्यक्तित्व, सामाजिक तथा ज्ञानात्मक और क्रियात्मक योग्यताओं की परीक्षा की जॉच की जाती है।

(३) निर्माण परीक्षा पद्धति (performance test)—

इस पद्धति मे तरह-तरह के चित्रो का निर्माण किया जाता है या किसी निश्चित वस्तु को निश्चित स्थान पर रखना होता है। यह कई प्रकार का होता है और प्राय: बच्चो पर विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

(४) मौखिक परीक्षा पद्धति (verbal test)—

यह पद्धति बिने महोदय की पद्धति से मिलती-जुलती है और उच्च मानसिक योग्यताओ की जॉच होती है। इसमें मौखिक प्रश्नो का उत्तर देना पड़ता है।

(५) कार्यसिद्धि पद्धति (achievement test)—

यद्यपि इसे हम पूर्णत: बुद्धि माप परीक्षा पद्धति के अन्तर्गत नहीं रख सकते तथापि इसके द्वारा स्कूलों मे बालको की बुद्धि की परीक्षा की जाती है।

(६) सामूहिक परीक्षा पद्धति (group test)—

सामूहिक परीक्षा पद्धति कई प्रकार की होती है और इसका भिन्न-भिन्न अवस्था के बच्चो और व्यक्तियो पर उपयोग होता है। इससे समय और शक्ति दोनो की बचत होती है।

(७) विशिष्ट योग्यता परीक्षा पद्धति (special ability test)—

इस पद्धति के द्वारा बच्चो की विशेष योग्यता और रुचि का ज्ञान प्राप्त होता है।

ये उपर्युक्त पद्धतियाँ बुद्धि मापने के काम में आती हैं। लेकिन इनके अतिरिक्त भी आज कई ऐसी पद्धतियाँ प्रचलित है जिनसे क्या बच्चा और क्या प्रौढ़ सभी की बुद्धि का पता लगता है। कुछ पद्धतियाँ शिक्षित व्यक्तियो के लिये उपयुक्त हैं और कुछ अशिक्षित व्यक्तियो के लिये। आज कल सैनिकों तथा अन्य कर्मचारियो की बुद्धि की माप army alpha और army beta के द्वारा होती है। द्वितीय विश्वव्यापी महायुद्ध के समय बहुत सी बुद्धि परीक्षा पद्धतियाँ आविर्भूत हुई हैं लेकिन अभी उनका पूर्णतः न तो विकास ही हुआ है और न प्रचार ही। न जाने भविष्य मे और कितनी पद्धतियो का आविर्भाव बुद्धि मापने के लिये होगा।

अब बुद्धि माप की उपयोगिता पर प्रकाश डालने के लिये यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि जब प्राचीन काल मे बुद्धि माप के साधन मौजूद नही थे तो उस समय सभी बालको को एक ही साथ एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिससे उनका विद्यार्थी जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता था। लेकिन अब इन पद्धतियो के द्वारा बालको को बुद्धि के अनुसार विभिन्न श्रेणियो मे विभक्त करके उनकी योग्यता के अनुरूप शिक्षा दी जाती है जिससे वे बहुत अच्छा करते हैं।

बुद्धि माप परीक्षा पद्धति के द्वारा बालकों की मानसिक कमजोरियों का पता लग जाता है और उनकी कमजोरियों को दूर करने की कोशिश की जाती है।

इसी के द्वारा मनुष्य की योग्यता और रुचि का भी ज्ञान हो जाता है और उसी के अनुसार उसे कार्य भार भी दिया जाता है जिससे कि वह अपने जीवन में सफल मनोरथ होता है।

माता-पिता भी अपने बच्चो का कार्यक्रम अब उनकी बुद्धि और योग्यता ही के अनुसार बनाते हैं और उन्हें अन्य कार्यों के लिये विवश नहीं करते हैं।

इसी के आधार पर व्यक्तिगत अन्तरो का भी ज्ञान प्राप्त होता है और हमे उन्हे श्रेणीवद्ध करने में कठिनाई नहीं होती।

सारांश यह है कि बुद्धि माप की परीक्षा से जो उपकार वर्त्तमान जगत को हुआ है उसका वर्णन करना कठिन है।

Q. 35.—Show your acquaintance with some tests that may be used for measuring the intelligence of pre-school children.

आज से बीस पच्चीस वर्ष पहले बच्चो को बुद्धि माप के लिये तरह-तरह की परीक्षण पद्धतियो का आविर्भाव हुआ है। उनमे pre-school children की बुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। यो तो उन परीक्षा पद्धतियो की कमी नहीं है लेकिन हम यहाँ प्रमुख परीक्षा पद्धतियो पर ही प्रकाश डालेगे।

यहाँ यह भी व्यक्त कर देना आवश्यक है कि स्टट्समैन (Stutsman) गेसेल (Gesell) और मीनेसोटा (Minesota) के परीक्षण (tests) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

स्टट्समैन परीक्षण (tests) मेरिल पामर स्कूल (Merrill Palmer School) की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला Psycho-

logical laboratory) मे ५२६ बच्चो पर प्रयोग करके तैयार किये गये। इन बच्चो मे २५२ बालक और २७७ लड़कियाँ थीं जिनकी अवस्था १८ महीने से लेकर ७१ महीने की थी। इस तरह से २१ परीक्षणो का निर्माण हुआ। एक पद्धति ऐसी है कि एक बक्स १६ cubes (छेदो) इस तरह से रखना पड़ता है कि lid जा सके। १८ महीने की अवस्था वाले बच्चे में केवल ३५ प्रतिशत सोलहो cubes को बक्स में रखने मे सफल होते है और २४ महीने की अवस्था वालों की संख्या ८० प्रतिशत होती है। उसी को यदि ३० महीने के बच्चे रखते हैं तो उनका प्रतिशत ६० होता है।

एक दूसरी परीक्षा में एक घोंसला-सा (nest) चार cube छेदो का होता है और उन्हें एक दूसरे मे रखना पड़ता है। यहाँ यह देखना पड़ता है कि ऐसा करने में बच्चे को कितना समय लगता है।

तीसरी परीक्षा में वेलिन सेरीज (Wellin series) के दो पेग बोर्ड (two peg boards) a और b रहते है जिनमें बच्चे को खूँटियाँ छेद में रखनी पड़ती हैं। इस परीक्षा मे भी समय पर ही ध्यान दिया जाता।

इसी प्रकार की और भी कई परीक्षाएँ बुद्धि माप की भिन्न-भिन्न प्रकार की है जिनमे शब्द (words) या शब्द समूहो को दोहराना पड़ता है या साधारण प्रश्नो का उत्तर देना पड़ता है। या बटनो को दबाना पड़ता है अथवा cubes या ६ cubes से पीरामिड (pyramid) बनाना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त पिन्टर (Pinter) और पैटरसन (Paterson) के mare and foal test, mankin test और decroly machine game आदि हैं।

गेसेल् (Gesel) के परीक्षण बहुत ही विचित्र प्रकार के हैं। उन्होंने विकासात्मक (developmental) दृष्टिकोण से इन परीक्षणो का निर्माण किया है। उनका कहना है कि विकास का क्रम अनिश्चित है। उसमे कोई विशेष अनुपात नही है। प्रथमावस्था में उत्तरावस्था की अपेक्षा विकास गति तीव्र होती है। उनकी परीक्षाओं का वर्गीकरण (classification) motor (क्रिया), language (भाषा), personal-social (व्यक्तिगत-सामाजिक) और adaptive behaviour (अभियोजित व्यवहार) के नामों से हो सकता है। इनका सम्बन्ध क्रमशः स्नायविक योग्यता (muscular capacity) भाषा (language) सामाजिक अनुभव और व्यक्तित्व के शील-गुण (social experience and personality traits) और वातावरण में अभियोजन क्षमता से रहता है। प्रत्येक परीक्षण मे ३५ items होते है। इसमे यांत्रिक रूप से बच्चे के विकास का निर्णय नहीं किया जाता है बल्कि उनका अंकन अक्षरो द्वारा होता है।

मीनेसोटा (Minnesota) की परीक्षाएँ की pre-school children के लिये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। ये मौखिक (verbal) और अमौखिक (non-verbal) दोनो प्रकार की हैं। कुछ परीक्षाएँ तो बीने (Binet) की तरह ही

है, जैसे शरीर के किसी अंग को व्यक्त करना, चित्र बनाना या स्मृति विस्तार (memory span) जानना आदि। और दूसरी परीक्षाएँ (Merill Palmer) की तरह हैं जिनमें प्रतिकूल (opposite) शब्दों को देना पड़ता है।

प्रधान परीक्षाएँ बुद्धि मापने की यही है जो pre-school children के लिये उपयुक्त हैं किंतु इनके अतिरिक्त और भी परीक्षाएँ ऐसे बच्चो के लिये प्रचलित है जिनका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

इसके सम्बन्ध में कुछ और जानने के लिये प्रश्न नम्बर ३४ के उत्तर से भी सहायता ली जा सकती है।

Q. 36 —Describe the chief methods of measuring intelligence

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ३४ का उत्तर देखें।

Q. 37 —What is intelligence ? Describe how it can be measured.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ३४ का उत्तर देखे।

Q. 38.—Define intelligence. What do you understand by measurement of intelligence ?

इस प्रश्न के पहले भाग के लिये प्रश्न न० ३४ का उत्तर देखे।

दूसरे भाग का उत्तर देने के लिये यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बुद्धिमाप (measurement of intelligence) का तो शाब्दिक अर्थ है बुद्धि ज्ञान की माप। लेकिन इस शाब्दिक अर्थ से ही हमलोगो को संतोष नहीं कर लेना चाहिये

क्योंकि अब बुद्धिमाप के द्वारा हम किसी बच्चे या व्यक्ति के बुद्धि प्रकार (kind of intelligence) और बुद्धि प्रसार (extent of intelligence) का ज्ञान प्राप्त करते हैं। बुद्धि-माप का वास्तविक मतलब है वह विभिन्न पद्धति वा तरीका जिसके द्वारा हम किसी शिशु या व्यक्ति विशेष की विभिन्न योग्यताओ का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अब हमलोग इसके द्वारा व्यक्ति की मानसिक त्रुटियो तथा योग्यताओ का तो पता लगाते ही है इसके साथ यह भी पता लगाते हैं कि इसका सामाजिक अभियोजन ठीक है कि नही अथवा इसकी रुचि कैसी है और यह किसी कार्य के योग्य है, आदि। तात्पर्य यह है कि बुद्धिमाप का प्रयोग अब अत्यन्त प्रशस्त अर्थ मे होता है जिसके द्वारा मनुष्य की विभिन्न प्रकार की शक्तियो का ज्ञान होता है। बुद्धिमाप की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन करने के लिये प्रश्न नम्बर ३४ का उत्तर देखे ।

Q 39.—What is intelligence and how can it be measured ? What are the uses of the measurement of intelligence ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ३४ का उत्तर देखे ।

CHAPTER 9

EMOTIONAL DEVELOPMENT

(संवेगात्मक विकास)

Q 40.—Trace the emotional development of children with special reference to love.

बालकों के संवेगात्मक विकास (emotional development) पर प्रकाश डालने के पहले हमें इस बात का खोज कर लेना आवश्यक है कि उनके कौन-कौन से संवेग (emotions) जन्मजात (innate) तथा कौन-कौन से अर्जित (acquired) हैं। बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने इस बात को खोज निकालने की कोशिश की जिनमें वाटसन एवं मारगन महोदय का नाम प्रथम आता है। इन लोगों ने संवेग की सत्ता को खोजने के लिये कई प्रयोग किये। यह प्रयोग जन्म के बाद से लेकर कुछ महीनो क बच्चो पर किया गया। अपने प्रयोग के फलस्वरूप वे लोग इस निर्णय पर आये कि इस समय बच्चो मे केवल तीन जन्मजात (inborn) संवेग पाये जाते है। जिसे हम भय, क्रोध एवं प्रेम (fear, rage and love) के नाम से पुकारते है। उन्होने देखा कि जब बच्चे का आश्रय (support) सहसा (suddenly) हटा लिया जाता है तथा जब उसके नजदीक जोर से बोला जाता है (loud noise) तो उसमें डर (fear) का सवेग पैदा होता है। इस वक्त बच्चा डर की प्रतिक्रिया स्वरूप (response) साँस की गति को तुरत रोक लेता है, हाथ-पैर को इधर-उधर फैलाने लगता है। अपनी आँख की पुतली चलाने लगता है। होठो (lips) को कपाने लगता है तथा वह चिल्ला उठता है। जब बच्चे की गति (movement) में किसी प्रकार की रुकावट आती है तो उसमे क्रोध का संवेग होता है। जब उसके हाथ-पैर को पकड़ लिया जाता है तो वह चिल्ला उठता है। फलस्वरूप डर भी जाता है। इस समय बच्चा

अपना देह कड़ा कर लेता है। हाथ को फेंकने लगता है, साँस रुक जाती है तथा चेहरा उतर (flush) जाता है। सयाना बच्चा ऐसी अवस्था मे बाधक को मारता है, जमीन पर गिरकर रोने लगता है। अक्सर बच्चा दाँत काटने की भी कोशिश करता है इस तरह अब उसमें इस परिस्थिति को दूर करने (avoid) की क्षमता दीख पड़ने लगती है। जबतक परिस्थिति दूर नही हो जाती तब तक इसी तरह की क्रिया करता रहता है। इसी तरह जब बच्चे के पीठ को सुहलाया जाता है अथवा थपकी दी जाती है तो उसमें प्रेम (love) का संवेग उत्पन्न होता है। उस समय बच्चा मुस्कुराने लगता है। कभी-कभी गुलगुलाकर (gurgling) कुछ बोलने का भी प्रयास करता है यानी यथाशक्ति प्रेम प्रदर्शन करता है।

वाटसन एवं मार्गन के अनुकूल बालको के सभी विशिष्ट (specific) संवेग इन्ही जन्मजात संवेगों की प्रतिक्रिया (reaction) स्वरूप होते हैं। किन्तु इनके बात की सत्यता प्रस्थापित करने के लिये कई मनोवैज्ञानिको ने कई जाँच पड़ताल की। इन लोगों ने इनके निकाले हुये सिद्धान्त में कई कमियाँ पाईं। "शरमन" महोदय ने देखा कि सभी बच्चे गिरने वा कड़े शब्द (loud noise) से उत्तेजित (excited) नही होते जैसे कि वाटसन और मार्गन द्वारा भय की प्रतिक्रिया स्वरूप होने का वर्णन किया गया था। इसी तरह उसने एक भी ऐसा सबूत न पाया जिससे यह साबित होता हो कि बच्चे के किसी कार्य्य में बाधा देने पर उसमें क्रोध आवे तथा पीठ पर थपकी देने पर

प्रेम प्रदर्शन करे। अतः "शरमन" के मुताबिक बच्चा किसी प्रकार की आकस्मिक (sudden) उत्तेजना (stimulation) की उपस्थिति से अलक्षित व्यवहार का प्रदर्शन करता है। "इरविन" महोदय ने भी यही देखा कि "वाटसन और मार्गन" के सिद्धान्त पूर्णतः ठीक नहीं थे। इनके मुताबिक बच्चों के उस संवेगात्मक व्यवहार को अधिक-से-अधिक generalised या mass activity कह सकते है। ब्रिजेज के मुताबिक उसे excitement कहना ही अच्छा होगा। हो सकता है यही excitement आगे चलकर क्रोध, भय एवं प्रेम के संवेग रूप में परिणत हो जाय।

अब बच्चे की उम्र में ज्यों-ज्यों वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों उसमें नाना प्रकार के संवेग उत्पन्न क्रमशः होते जाते हैं, अब उसमे क्रोध, भय, प्रेम एवं आनन्द का संवेग स्पष्टतः (clearly) दीखने लगता है। अब जिस परिस्थिति मे संवेग उत्पत्ति नहीं होती थी उसी परिस्थिति से उसे उत्तेजना मिलती है।

जब इस दृष्टिकोण से हम देखते है तो पता चलता है कि कुछ सयाने होने पर बच्चे को अंधेरा (darkness), कुत्ता (dog), साँप तथा अन्य इसी तरह की चीजों से, जिससे पहले किसी तरह की उत्तेजना नहीं मिलती थी अब उसी परिस्थिति मे संवेगात्मक प्रतिक्रिया (emotional response) के लिये उत्तेजना मिलने लगती है।

कई मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बच्चों में संवेगात्मक

विकास उनके आयुवृद्धि (maturation) पर निर्भर करता है। किंतु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसके कारण स्वरूप सम्बद्धता (conditioning) पर अधिक जोर दिया है। असल मे देखा जाय तो हमें यह पता चलेगा कि उनके विकास में दोनों कारणो का प्रभाव पड़ता है। अब हम उस पर बारी-बारी से प्रकाश डालेंगे।

वाटसन, मार्गन के मुताविक प्रेम, क्रोध एवं भय यही तीन जन्मजात संवेग बच्चो में पाये जाते है। उन्होंने अपने प्रयोग में यह दिखला दिया है कि बालको के बचपन मे अँधेरे, पशु, अपरिचित (stranger) तथा अन्य वस्तुएँ जिनसे बच्चे डरते हुए पाये जाते हैं, जन्मजात डर नहीं होता। तब प्रश्न यह उठता है कि आखिर बच्चे इनसे डरने क्यो लगते है जब कि उनमे ऐसी प्रवृत्ति जन्मजात नही होती ? इसके उत्तर मे वाटसन का कहना है कि बच्चे ऐसा डरना सम्बद्धता के कारण सीखते हैं। उनका कहना है कि हम बिजली (lightning) से इसलिये डरते हैं कि बिजली तथा ठनका (thunder) एक ही साथ होतें हैं। प्रथम हम इस आवाज (loud noise) से डरते हैं पश्चात इसी के साथ विजली भी चमक जाती है इसलिये इससे भी डरने लगते हैं।

वाटसन एवं रीनर महोदय ने एक प्रयोग अलवर्ट नामक लड़के पर किया। वह लड़का किसी रोवेदार (furry) जानवर जैसे कुत्ता, विल्ली, चूहा आदि से नही डरता था। एक दिन

उसे, प्रयोगशाला में लेजाकर चूहा खेलने को दिया गया। बच्चा चुपचाप उससे खेलने लगा। यहाँ हमें यह न भूलना चाहिये कि किसी आकस्मिक घटना के हो जाने से बच्चे में भय पैदा होता है। अतः दूसरे दिन "अलवर्ट" ने ज्योंही चूहे को छूना चाहा कि जोर से धमाके की आवाज कर दी गयी। फलतः बच्चा डर गया। इसी तरह दो चार बार करने से बच्चे निश्चयात्मक रूप से उस प्रकार के जानवर से डरने लगे। यहां तक कि उसे देख कर ही रोना शुरू कर देते हैं तथा सहायता को पुकारने लगते हैं इस तरह हमलोगो ने देखा कि किस प्रकार बच्चे conditioning (सम्बद्धता) के आधार पर डरना सीखते है। इसी तरह अन्य प्रकार के संवेग भी उत्पन्न होते है।

अब हम इस बात को देखने की कोशिश करेगे कि बच्चो के संवेगात्मक विकास पर उनके आयु का प्रभाव कैसा पड़ता है। इस विषय के अध्ययन करने वालो मे 'गुडएनफ" का नाम स्मरणीय है। उन्होने अपना प्रयोग एक लड़की पर किया जो जन्म से ही अंधी तथा बहरी थी। हम देख चुके है कि सम्बद्धता के आधार पर किस प्रकार अलवर्ट को डरना सिखाया गया था किंतु यहाँ इसके साथ सीखने का सवाल ही न था। कारण, न तो उसे आँखे ही थी और न कान। किंतु "गुडएनफ" ने पाया कि दस साल की अवस्था मे इस लड़की में क्रोध एवं खुशी के संवेग वर्त्तमान थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बालकों के संवेगात्मक विकास पर आयु का जबर्दस्त हाथ रहता है। इस तरह और भी कई प्रयोग किये गये तथा यह सिद्ध हुआ कि

सम्बद्धता (conditioning) से अधिक प्रभाव उसके संवेगात्मक विकास पर परिपक्वता का पड़ता है।

सच बात तो यह है कि आयु एवं सम्बद्धता का समान प्रभाव बच्चों के संवेगात्मक विकास पर पड़ता है। बालकों को विषय का ज्ञान होना आवश्यक है, किन्तु उस शिक्षा का प्रभाव उन पर तभी पड़ेगा जब उनकी ज्ञानवाही नाड़ियाँ (sensory-nerve) सबल होती हैं तथा इनकी सबलता आयु मे वृद्धि आने पर होती है। इस तरह हम देखते हैं कि आयु एवं शिक्षा दोनो का स्थान उसके संवेगात्मक विकास मे समान रूपेण पड़ता है।

बच्चो के संवेगात्मक विकास पर प्रकाश डालने के बाद अब हम उनके प्रेम सवेग (emótion of love) पर विशेष रूप से विचार करेंगे। उसके सम्बन्ध मे हमे यह याद रखना चाहिये कि बालकों में इस संवेग का आगमन जन्म के कुछ महीनो बाद हो जाता है। मनुष्य का बच्चा जन्मकाल में स्वयं असहाय रहता है अतः उसकी रक्षा एव पालन-पोषण का भार दूसरे मनुष्यों के ऊपर रहता है। उनके दयापूर्ण व्यवहार एव सहायतापूर्ण कार्य ही बच्चे के मन में उनके प्रति प्रेम का भाव अंकुरित करते हैं। इस समय माता-पिता का प्रधान काम होता है, अपने बच्चे को हर तरह से सहायता एव आराम देना। इसी कारण माता-पिता और बच्चो में प्रेम होता है। एक दूसरे पर प्रेम की दृष्टि रखते हैं। माता-पिता अपने बच्चे के साथ प्रेम-पूर्ण व्यवहार करते हैं इसलिये बच्चे भी उनके साथ प्रेम दिखलाने लगते हैं। कारण, इस समय बच्चे अनुकरणशील (Imitative) होते हैं।

माता-पिता वा घर के अन्य सदस्य बच्चों के साथ प्राय: खेला करते हैं जिससे बच्चे मे प्रेम का सवेग उत्पन्न होता है। इसी तरह बच्चे एक दूसरे के साथ खेला करते है जिससे उनमें आपस मे प्रेम भाव बढ़ता है। इसी कारण बचपन में एक घर के रहने वाले आपस मे दोस्ती कर लेते हैं। इसका कारण यही होता है कि साथ-साथ खेलने से उनमें परस्पर प्रेम-भाव बढ़ता है तथा उसी का प्रदर्शन वे आपस मे दोस्ती कर, करते हैं। इसी तरह आयु वृद्धि (maturation) एवं शिक्षा के आधार पर सयानो, ग्रामीणो, देशवासियो आदि के प्रति प्रेम बढ़ता जाता है। यहाँ प्रेम का प्रकाशन क्योंकर होता है इसको व्यक्त करने के लिये हमे यह नहीं भूलना चाहिये कि जब बच्चा बारह महीने का हो जाता है तब उन सयानों के प्रति, जो उसकी सहायता एवं परिचर्य्या मे रहते हैं, स्नेह प्रदर्शन करने लगता है। कभी-कभी आठ महीने की उम्र के लड़के को भी ऐसी प्रतिक्रिया (response) करते पाया गया है। बारह महीने के थोड़े दिन बाद बहुसख्यक लड़के चुम्बन करना सीख जाते है। इसको दो महीने के अन्दर ही एक दूसरे बालको के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करने लगते हैं। अब प्राय: मनुष्य तथा वस्तुओ के प्रति उसके प्रेम मे वृद्धि होने लगती है। चार-पॉच वर्ष की अवस्था मे बच्चो को अपने खिलौने (toys) से प्रेम हो जाता है। इस समय लड़कियाँ अपनी गुड़ियो (dolls) को बहुत चाहती है तथा कई कीमती चीजो के होने पर भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहतीं।

ऊपर की विवेचना में हमने बच्चों के प्रेम प्रकाशन पर प्रकाश डालने की परिचेष्टा की है। उस पर और विचार करने पर हम देखेंगे कि इस उम्र मे बच्चों के प्रेम के कुछ साधन (means) होते हैं जिनके आधार पर वे अपना प्रेम किसी व्यक्ति, खिलौने एवं वस्तुओं के प्रति प्रकट करने में अपने को समर्थ कर पाते हैं। इनके मुख्यत: निम्नलिखित साधन ये हैं—वे प्राय: प्रेम प्रदर्शन मुस्कुरा कर करते हैं। कभी-कभी धीरे से हँस भी देते हैं, एक दूसरे के ऊपर थपकी देकर भी वे प्रेम दिखला सकते हैं। चुम्बन करना तथा किसी चीज पर अधिक समय तक ताकते रहना भी उनके उन्हीं साधनो में है।

प्रेम-संवेग के विकास काल मे अधिक निरीक्षण की आवश्यकता होती है क्योंकि इस समय खतरे का भी भय रहता है। बच्चो का प्रेम केवल उनके माता-पिता मे ही सीमित न होना चाहिये। इससे उनके चरित्र-निर्माण पर भविष्य में जबर्दस्त धक्का लगता है। दूसरा खतरा होने की सभावना वहाँ रहती है जब उनमें किसी एक लड़के से दोस्ती करने की आदत हो जाती है, उससे भी उनके भावी जीवन मे सुनागरिक बनने में कठिनाई होती है। इस समय के समुचित निरीक्षण (guidance) पर बच्चों का भविष्य बहुत निर्भर करता है।

✓Q. 41.—What do you consider to be the early emotional responses ? Show their development with examples.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४० का उत्तर देखिये।

Q. 42.—Explain the features of early emotional patterns connected with anger and love.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४० का उत्तर देखिये। प्रेम संवेग के सम्बन्ध मे भी उपर्युक्त प्रश्न में प्रकाश डाला जा चुका है। अतः उसी का अनुसरण (follow) कीजिये।

बालकों के प्राथमिक संवेगों (early emotions) पर विचार करने के बाद यहाँ हम प्रधानता उनके क्रोध-संवेग पर ही आपका ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। यहाँ हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि क्रोध संवेग बालकों में क्योंकर उत्पन्न होता है, उसके प्रकाशन किस तरह होते है, उसकी दवा (remedy) क्या हो सकती है ? तथा उसका प्रभाव बालकों के ऊपर कैसा पड़ता है। इस पर विचार करने के पूर्व हमें यहाँ याद रखना चाहिये कि क्रोध एक इस प्रकार का मानसिक संवेग (emotion) है जो हर प्राणियो में हुआ करता है। क्रोध और भय को मनोवैज्ञानिकों ने मूल संवेग माना है। किसी-किसी ने इसे बीभत्स-संवेग (a course emotion) भी कहा है। इससे प्रभावित व्यक्ति असाधारण व्यवहार करने लगता है। इसकी जब अधिकता होती है तो मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

जब हम उसके कारण (cause) पर अपना दृष्टिपात करते हें तो हम देखते हैं कि जब हमारी किसी भी मानसिक प्रवृत्ति में अवरोध (check) होता है तो क्रोध पैदा होता है। इसी

तरह जब हम बालक की खाने या खेलने की इच्छा का दमन करते हैं तो उसमें क्रोध आता है। क्रोध के समय बालक रोने लगता है। यही उसके क्रोध की पहचान है। क्योंकि उस समय दूसरे प्रकार से क्रोध प्रकाशित करने की उसमे शक्ति नहीं होती है। किसी कवि ने कहा कि–'बालकस्य रोदनं बलम्'। यह देखने का अवसर तब मिलता है जब बालक के इधर-उधर घूमने की इच्छा को हम तृप्त नहीं होने देते वा उससे कोई चीज छीन लेते हैं। इसके अलावे उसके शरीर को साफ (wash) कराने, स्नान कराने के समय या किसी काम को करने में असफल (failure) होने से तथा किसी इच्छा की पूर्त्ति न होने से भी उसमें क्रोध की उत्पत्ति होती है। इन बाह्य कारणों (external causes) के अलावे उसके क्रोध के आन्तरिक कारण (internal causes) भी होते हैं जिनमे से कुछ द्रष्टव्य हैं, जैसे, सोने की कमी, अस्वस्थता एवं किसी तरह की तकलीफ की अवस्था मे भी बच्चा क्रोध करने लगता है।

क्रोध के समय बालको के व्यवहार मे उनकी अवस्था के आधार पर भेद पड़ता है। ज्यो-ज्यो उनके आयु मे वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों उनके क्रोध प्रदर्शन का तरीका सामाजिक होता जाता है। एक से तीन साल की उम्र मे क्रोध की अवस्था मे बच्चे अपनी साँस रोक लेते है, मारते (kick) हैं, जोर से चिल्लाकर (crying) अपने शरीर को कड़ा कर लेते हैं। कभी-कभी वे जमीन पर स्वयं गिर

जाते है, धूल में लोटने लगते है, दाँत काटने लगते हैं, तथा आस-पास के सामान को तोड़ने-फोड़ने लगते हैं। ऐसा व्यवहार उनमें साधरणतः (commonly) देखा जाता है। लेकिन जब वे कुछ बड़े होते है तब वे अपना व्यवहार मौखिक रूप से (verbal) प्रदर्शन करने लगते हैं। इस समय उनमें गाली देना, गरजना (threaten) आदि इसी तरह का व्यवहार देखा जाता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि क्रोध के समय बालक मारने (kicking) की प्रतिक्रिया करते हैं तथा बालिकायें (stamping) की। गुडएनफ महोदय के मतानुसार दो साल की उम्र तक बच्चों में क्रोध का संवेग (emotion) बढ़ता जाता है पश्चात् घटने लगता है। अब तक उनमें अवांछनीय परिस्थिति को छोड़ने (avoid) की शक्ति आ जाती है। किंतु हाँ, यहाँ यह बात अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि सयानो के क्रोध का प्रतिफल बच्चो के क्रोध के क्रम से अधिक खतरनाक होता है।

बालक के क्रोध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके क्रोध का प्रकाशन रोकर होता है। सशक्त (strong) होने पर वह क्रोध की अवस्था मे मार भी देता है। बालक के क्रोध का असर उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।

किसी भी चीज की दवा अवश्य होती है, आवश्यकता होती है उसके खोजनेवाले की। अब बालक के क्रोध निवारण के तरीके पर जब हम अपना दृष्टिपात करना चाहते हैं तो पाते हैं कि बालको का काम स्पष्टतः सयानों पर निर्भर करता है। यदि

सयाने उनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करेंगे तो उन्हें क्रोध करने का बहुत कम मौका मिलेगा। मूर्ख माता-पिता बालक को देर तक रोने देते हैं जिससे उसका क्रोध स्वतः शांत हो जाये। इस तरह बालक के क्रोध पर विजय प्राप्त करना उसके व्यक्तित्व का सर्वनाश करना है। ऐसा लड़का स्वाभिमानी अथवा आशावादी कदापि नहीं हो पाता। कभी-कभी लड़का किसी विशेष प्रकार कि असन्तुष्टि प्रकट करने के लिये इतना रोता है कि उसका चेहरा काला पड़ जाता है। कभी-कभी तो मिनटों तक साँस बन्द हो जाती है। जिससे उसका जीवन खतरा में ही पड़ा रहता है।

अभिभावकों को इसके ऊपर उचित नियंत्रण रखना चाहिये। कारण, इन्हीं संवेगों का भविष्य में विकास भी होता है।

Q. 43.—What are the chief causes of fear and anger in the early life of the child? Indicate in what different ways a child usually reacts to situation provoking anger in him.

इस प्रश्न के क्रोध संवेग (anger emotion) को समझने के लिये प्रश्न नम्बर ४२ का उत्तर देखिये।

बालकों के भय का विवेचन करते हुये हमें यह समझ लेना चाहिये कि भय एक मानसिक उद्वेग है जो सभी जीवों में होता है। प्रकृति ने आत्मरक्षा के लिये हर जीव को इसे अपनी ओर से प्रदान किया है।

भय निकट भविष्य मे आनेवाले दुःख का संकेत करने वाला संवेग है।

बालकों के भय संवेग पर विचार करते हुये हम यह पाते हैं (वाटसन के मुताबिक) कि उनके भय का कारण होता है जोर की आवाज (loud noise) अथवा आश्रय का (support) का सहसा हट जाना। पीछे बच्चे सम्बद्धता के आधार पर (conditioning) पशु अपरिचित वस्तु एवं अन्धेरा आदि से भी डरने लगते हैं। किंतु इरविन ने अपने प्रयोग मे बच्चे को दो फीट से गिरा दिया पर वह उसमें भय का चिह्न न देख सका। इसी तरह शरले ने जोर की आवाज करने पर बच्चे में कुछ भी परिवर्त्तन न पाया। गेसेल (Gessel) के मुताबिक बच्चों मे भय पैदा करने में आयुवृद्धि का बड़ा हाथ है। आयुवृद्धि (maturation) बच्चे में situation का अर्थ समझने में सहायता करती है। गेसेल ने देखा कि दश हफ्ते के बच्चे को जब एक कोठरी में बन्द कर दिया गया तो उसका कुछ भी असर उस पर न पड़ा लेकिन उसी लड़के को जब ३१वे हफ्ते में रक्खा गया तो उसमें भय उत्पन्न हो गया।

बालक जन्म से बहुत थोड़ी बातों से डरता है। इस समय वह केवल जोर की आवाज (loud noise) से डरता है किंतु जब इसीका सम्बन्ध अँधेरे से हो जाता है तो वह उससे भी डरने लगता है। भय का दूसरा कारण बच्चे का दुखदायी अनुभव होता है। कितने डर तो बालकों में उसके माता एवं दाइयों की नासमझी से आ जाते हैं। भय भाव उत्पन्न करने वाली बात से बच्चा डरने लगता है। भूत, प्रेत, चोर आदि की भयावह कहानियों को अपनी मा या दाई के मुँह से सुनने पर

वह डरने लगता है। इसी तरह हौवा का डर प्राय: लड़कों में पाया जाता है। उनके भय का प्रधान कारण यह है कि इस समय उन्हें काल्पनिक भय हुआ करता है तथा आलोचना (criticize) करने की शक्ति उनमें बहुत कम होती है अत: वे तुरत डर जाते है।

प्रश्न के दूसरे खण्ड के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४२ का उत्तर देखिये।

Q. 44.—What do you mean by emotional stability? Indicate the more important causes of emotion instability.

इस प्रश्न के पहले भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ८१ के पहले भाग का उत्तर देखिये।

संवेगात्मक अस्थिरता (emotional instability) के प्रमुख कारणों को व्यक्त करते समय हमलोगों को यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इसके कई प्रकार के कारण होते हैं लेकिन यहाँ हम कुछ ही कारणों को व्यक्त करेंगे। वे कारण निम्नांकित हैं।

(१) अच्छे साधनों का अभाव (lack of adequate material facilities)—जिस बच्चे को सुन्दर पौष्टिक भोज्य पदार्थ खाने को मिलते है तथा आवश्यकतानुसार उसे माता-पिता सोने देते है और जिसके स्वास्थ्य की रक्षा बुद्धिमानी और सावधानी से की जाती है वह बच्चा उस बच्चे से अच्छा रहता है जिसे इन सबकी असुविधा रहती है। जिस बच्चे को अच्छे

कपड़े और सुन्दर खिलौना प्राप्त होते हैं वह आर्थिक संकट का अनुभव नहीं करता और अपने को इन कठिनाइयों से सुरक्षित तथा वंचित समझता है जिसके फलस्वरूप उसमें अवांछनीय संवेगो तथा हीन परिज्ञान के भावो (feeling of inferiority complex) का अभाव रहता है। किंतु जिस बच्चे को उपर्युक्त साधनो का अभाव रहता है वह कभी भी अपने को सुरक्षित नहीं समझता और फलस्वरूप उसमें हीन परिज्ञान की भावना काम करती रहती है और असामयिक तथा अवांछनीय संवेग से पीड़ित रहता है जिसे हम संवेगात्मक अस्थिरता कहते हैं।

(२) असुरक्षित गृह जीवन (insecure home life)—जिस वच्चे की व्यक्तिगत आवश्यकताओं (personal needs) की परिपूर्त्ति उचित रूप से होती है और जिसे समुचित रूप से माता-पिता का स्नेह प्राप्त होता है वह घर में बहुत ही सन्तुष्ट रहता है और उसका संसार के प्रति तथा जीवन के प्रति भी वैसा ही सुरक्षित तथा स्थिर दृष्टिकोण भी बन जाता है। उस बच्चे को किसी प्रकार की चन्ता नहीं रहती। चूँकि उसकी सभी इच्छाओ का प्रकाशन तथा संतृप्ति यथेष्ठ प्रकार से होता है इसलिये वह व्याघातक परिस्थितियो (frustrating situations) में भी किसी प्रकार का सवेग प्रदर्शित नहीं करता। लेकिन जिस बच्चे को ये सब सुविधाएँ नहीं मिलतीं वह बराबर चिंतित रहता है और तरत-तरह के सवेगो का शिकार भी बना रहता है।

(३) स्व प्रकाशन के अवसर का अभाव (lack of opportunity for self-expression)—कितने ही ऐसे औपचारिक प्रमाण (clinical evidences) वर्त्तमान है जिनसे स्पष्ट है कि जिस बच्चे को अपने साथियो को चुनने मे स्वतंत्रता रहती है तथा जिसके माता-पिता वस्त्रो के चुनाव तथा गृह प्रवन्ध में बुद्धिमानी से बच्चे की सहायता करते है वह बच्चा अनावश्यक निग्रह (restraint) पर किसी प्रकार के क्षोभ (resentment) से पीड़ित नहीं होता। उसमें आत्म प्रकाशन का अवसर मिलने से आत्म विश्वास रहता है और उसमे संवेग नियंत्रित रहते हैं। लेकिन जिस बच्चे को उपर्युक्त कामो में स्वतंत्रता नहीं मिलती तथा माता-पिता बुद्धिमानी के साथ उसकी सहायता नहीं करते तो वह अपनी मनमानी जिद पर अड़ा रहता है और वह किसी प्रकार का अवरोध (restraint) होने पर क्रुद्ध और क्षुब्ध हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे बच्चों मे सवेगात्मक अस्थिरता बनी रहती है।

(४) संवेगात्मक झोको से अरक्षित (lack of protection from high emotional stresses)—बच्चो के मानस जीवन पर दो प्रकार की परिस्थितियो का प्रभाव बहुत ही बुरा और भयावह पड़ता है। इसलिये उनकी रक्षा उत्तेजित तथा भयावह परिस्थितियों से बराबर करते रहना चाहिये। जिस बच्चे की रक्षा ऐसी परिस्थितियो से नहीं होती उसमे भय और स्नायविक उपद्रव बने रहते हैं। यदि किसी बच्चे को कुत्ता काट खाय या जिसका प्रिय खिलौना कोई मसल डाले अथवा

जिसके माता-पिता आपस में झगड़ते रहते हैं वह बच्चा निरंतर संवेग के झोकों में पड़ा रहने के कारण अस्थिर-सा बन जाता है और फलतः उसमें संवेगात्मक अस्थिरता बनी रहती है। अतएव माता-पिता को ऐसी उत्तेजक परिस्थितियो से बच्चो को बराबर बचाना चाहिये।

(५) सामाजिक जीवन का अभाव (lack of opportunity for social living)—छोटे बच्चो को अपनी अवस्था वाले बच्चो के साथ खेलने तथा सामाजिककरण (socialization) का निरंतर अवसर देना चाहिये। ऐसी ही परिस्थिति मे बच्चे अपने भावों को समुचित रूप से प्रकाशित करने का ढंग सीखते है। संवेग का प्रकाशन भी सामाजिक ही होता है। उनके खेल-कूद भी समुदाय के ही अनुरूप होते हैं क्योंकि वे अपने साथियो के अनुसार व्यवहार करना सीखते हैं इसलिये उनमे संवेगात्मक स्थिरता की नीव भी पड़ जाती है। परन्तु जिन बच्चो को अपनी अवस्थावाले बच्चो के साथ खेलने का अवसर नहीं दिया जाता वे अपने को समाज के अनुरूप अभियोजित करने मे असमर्थ होते हैं उनमें स्वार्थपरता की भावना काम करती है। इसीलिये उनमें संवेगात्मक अस्थिरता भी पाई जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि संवेगात्मक अस्थिरता के उपयुक्त ही प्रमुख कारण हैं। इसे हम दूसरे शब्दो में कह सकते हैं कि यह उसी बच्चे में पाया जाता है जिसका लालन-पालन

समुचित रूप से नहीं होता है और जिसकी इच्छाएँ अज्ञानी माता-पिता के द्वारा कुचल दी जाती हैं।

Q. 45.—What do you mean by emotional pattern? Indicate in what different ways a little child can express his fear (1946 S)

इस प्रश्न के प्रथम खण्ड के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४० का उत्तर देखिये।

भय की अवस्था मे बालको के शारीरिक अवस्था की व्याख्या करने के लिये हमे यह देखना पड़ेगा कि भय की हालत में बच्चे किस प्रकार से अपना भय प्रकट करते हैं। इसमे यहाँ यह स्मरणीय है कि भय के समय विशेष प्रकार की शारीरिक प्रक्रियायें होती रहती हैं। भय की अवस्था मे उसका चेहरा पीला पड़ जाता है। ओठ और मुँह सूख जाते हैं। मुँह से कोई बात नहीं निकलती। शरीर के अन्दर पाचन क्रिया मे कमी आ जाती है। इस अवस्था में वह प्रसन्न नहीं रहता। जिस बालक को सदा भय घेरे रहता है उसके शारीरिक विकास मे कमी आ जाती है। किसी भयावह परिस्थिति का देखकर बच्चा स्तब्ध हो जाता है। कभी-कभी सहायता के लिये पुकारता है। परिस्थिति को किसी प्रकार दूर करना (avoid) चाहता है। सयाने बच्चे में परिस्थिति निवारण की शक्ति आ जाती है अतः वह किसी भयावह परिस्थिति मे कूद कर या दौड़ कर भाग जाता है, और सहायतार्थ चिल्लाता है। आत्मरक्षा के लिये कोशिश करता है। जिस समय बच्चे अपने माता या दाई के साथ रहते

है वैसी हालत मे भयावह परिस्थिति उत्पन्न होने पर बच्चे अपने माँ की गोद में चिपक जाते है। उसमे से हटाने पर भी नहीं हटते तथा दूसरे दिन से उस परिस्थिति को देखकर दूर से ही चिल्ला उठते है। वह दॉत बैठा लेता है तथा अपने देह को कड़ा कर लेता है। किसी-किसी अवस्था मे तो वह एक टक से निर्निमेष दृष्टि से देखने लगता है, मूक हो जाता है जबतक कि वह परिस्थिति दूर न हो जाये।

एक बार एक लड़का अपनी बहन के साथ खेल रहा था। दैवात् वह लड़की कुएँ में गिर पड़ी। लड़का उसे न पाकर बहुत डर गया। घर पर जब उससे लोगों ने लड़की के विषय में पूछा तो वह बिलकुल चुप हो गया, वह एकटक से निहारने लगा। उसका चेहरा पीला पड़ गया। साँस की गति मे भी मन्दता आ गयी यह हालत उसकी तबतक रही जबतक लड़की कुएँ से निकाल कर न लायी गयी।

इस तरह इन्हीं उपर्युक्त तरीको से बालक अपने भय संवेग का प्रदर्शन करते है।

Q. 46.—What are the causes of fear and anger in children? Indicate how a child reacts to situation provoking fear? Suggest some ways of handling children's fear.

प्रश्न के प्रथम भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४३ का उत्तर देखिये।

प्रश्न के द्वितीय भाग के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४२ का उत्तर देखिये।

भय के समय में बालको को handle करने के लिये हमें पहले उसकी स्थिति का अध्ययन कर लेना पड़ेगा। पश्चात् हम उसके कारण को खोजेंगे तब सम्बद्धता (conditioning) के आधार पर उसका निवारण करने की कोशिश करेंगे।

मान लिया कोई बालक किसी रोआँदार जानवर से अधिक डरता है। अब उसके इस डर को दूर करने के लिये हम निम्नलिखित उपाय करेंगे। बच्चे को बड़े प्यार से खिला-पिला कर अपनी गोदी में ले लेगे तथा उसे ले जाकर उस जानवर को अलग से ही बुलावेंगे तथा उस बच्चे को उस जानवर को खिलाने के लिये हाथ में दे देगे। जानवर को आते देख कर बचा डरने लगेगा किंतु हम उसे खूब साहस देंगे तथा आज अलग से ही खाना खिलवा देगे। इसी तरह जब हम बच्चे को कल्ह होकर करने को बाध्य करेंगे तो देखेंगे कि आज वह कुछ कम डरता है। इस तरह दो-चार रोज के बाद बचा खुद खाना लेकर उसे खिलाने लगेगा तथा उसके साथ खेलने भी लगेगा।

इस तरह उपर्युक्त उपाय से शिक्षा के माध्यम से सम्बद्धता के आधार पर बालक के भय को दूर करने मे समर्थ हो पायेंगे।

Q. 47. Give examples of the fear responses of the child. How can fear be eliminated ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४६ का उत्तर देखिये।

Q. 48. Explain the role of maturation in emotional development.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर १४ का उत्तर देखिये।

CHAPTER 10

LANGUAGE DEVELOPMENT

(भाषा विकास)

Q. 49. Trace the devolopment of language in early childhood.

इसके पहले कि हम बच्चों के भाषा विकास पर प्रकाश डालें यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि मनुष्य में भाषा प्रकृति-दत्त सबसे बड़ी देन है। मनुष्य को छोड़ कर संसार के अन्य जीव इसका प्रयोग नहीं करते इसलिये वे सभी मनुष्यों से निम्नतरस्तर में ही हैं। मनुष्य का उत्थान तथा उसकी संस्कृति आदि इसी पर निर्भर करती है। यदि मानव जीवन में भाषा का महत्त्व नहीं होता तो आज हम उन्नति की इतनी उच्च शिखर पर कदापि नहीं पहुँचते।

बच्चे के भाषा विकास पर प्रकाश डालने के लिये यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि जब बच्चा पहले-पहल उत्पन्न होता है तो उस समय उसमे क्रन्दन-ध्वनि (cry) के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता और उस क्रन्दन-ध्वनि के अर्थ को भी वह कुछ नही समझता। इस तरह हम देखते हैं कि जन्म के समय

बच्चे में केवल चिल्लाने की ही शक्ति विद्यमान रहती है। इसके अतिरिक्त भी बच्चा जब जोर से साँस लेता है तोभी उसके मुँह से कुछ शब्द उच्चरित होते हैं लेकिन ये शब्द किसी अर्थ के द्योतक नहीं होते हैं। इन्हें हम सहज ध्वनि (reflex sound) कह सकते है। इसके बाद जब बच्चा किसी संवेगात्मक (emotional) परिस्थिति (environment) से घिर जाता है या भूख (hunger), प्यास (thirst), जाड़ा (cold) और परिश्रांति (fatigue) की अनुभूति करता है तोभी वह चिल्लाता ही है। लेकिन उसके उस चिल्लाने की ध्वनियों मे परिवर्त्तन होता रहता है क्योकि विभिन्न परिस्थितियो (situations, के प्रति विभिन्न प्रकार की चिल्लाहट (cry) से विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ (respones) करता है। बच्चा जब आराम (comfort) का अनुभव करता है तब भी चिल्लाता ही है। शर्ली (Shirley) महोदय का कहना है कि ऐसा बच्चे में १० सप्ताह के लगभग होता है। यहाँ हमे यह नही भूलना चाहिये कि ध्वनियो की इन भिन्नताओ का ज्ञान बच्चे को कुछ नही रहता।

बच्चे की यह सहज ध्वनि या चिल्लाहट (reflex sound) उसके बलबलाने (babbling) में परिणत हो जाती है। उसका बलबलाना पूर्णत: निरर्थक होता है और इस अवस्था मे वह एक ही तरह की ध्वनि (sound) को बार-बार दुहराता रहता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि एक ही ध्वनि को बार-बार दुहराने पर बच्चे को आनन्द मिलता है। बलबलाने की अवस्था का आविर्भाव बच्चे मे दूसरे या तीसरे महीने मे होती

है और लगभग पन्द्रहवें महीने तक रहती है और पुनः यही बलबलाना शब्दोच्चारण में परिणत होकर भाषा का रूप धारण कर लेता है। बच्चे का बलबलाना भी कई प्रकार की ध्वनियो में होता है और इससे उसे भविष्य मे बहुत मदद मिलती है। इस बलबलाने से बच्चे की वागिन्द्रिय में परिपक्वता (maturation) आ जाती है। इसी (babbling) ध्वनि से बच्चो में सार्थक शब्दों का आविर्भाव होता है जैसे मामा, दादा, बाबा आदि। दो महीने से लेकर छः महीने के अन्तर्गत इस बलबलाने का अर्थ सामाजिक (social) हो जाता है और बच्चा एक ही ध्वनि से कई अर्थों को व्यक्त करता है। यहाँ इसका भी उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि यो तो बच्चा की बोली को समझने में ४ वर्ष तक कुछ-न-कुछ कठिनाई होती है लेकिन प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ है कि डेढ़ वर्ष की अवस्था मे बच्चा जो कुछ बोलता है उसका चौथाई, दो वर्ष मे जो कुछ बोलता है उसका दो तिहाई ही हमलोग समझने मे समर्थ होते हैं। इसी प्रकार तीन वर्ष के बच्चे की ८/१० बोली को हमलोग समझने लगते हैं और अन्त में चार वर्ष की अवस्था मे बालक जो कुछ बोलता है उसका ९९.६ प्रतिशत हमलोग समझने में सफल होते है।

हाँ, तो (babbling stage) मे ही कुछ दिनो के बाद बच्चा विभिन्न भाँति के शब्दो के अर्थों को समझने लगता है और उन्हीं के अनुसार अपने को वातावरण (environment) मे अभियोजित (adjust) करता है। बच्चा स्वतः शब्दो का

बोलना नहीं सीखता प्रत्युत पहले-पहल उसका बोलना अनुकरणात्मक (imitative) होता है। बच्चे माता-पिता या अन्य सम्बन्धी जिस शब्दों को बोलते हैं वह उन्हीं का अनुकरण करने लगता है और बाद में उनके अर्थ को भी समझने लगता है। हमें यहाँ यह याद रखना चाहिये कि अनुकरण करते समय बच्चा बड़ो के पूरे वाक्य को नही दुहराता है बल्कि उसके एक शब्द को ही दुहराता है और उसी एक शब्द (word) से वह पूरे वाक्य का मतलब लगा लेता है।

प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ है कि बच्चे पहले-पहल ऐ, (a) ए, (e) अ, (a) इ, (i) आदि स्वर वर्णों का ही उच्चारण करते हैं उसके बाद व्यंजन वर्णों का आविर्भाव उनमें होता है। छः महीने के बच्चे केवल बारह व्यंजन (consonants) वर्णों का उच्चारण करते हैं। बच्चा पहले उन व्यंजन वर्णों का उच्चारण करता है जिनको वह आसानी से बोलने लगता है तथा जिसको बोलने के लिये वाक्-इन्द्रिय को कोई कठिनाई नही होती है। फिर क्रमशः वह कठिनाई से बोले जानेवाले व्यंजन वर्णों को बोलना आरम्भ करता है। जैसे-जैसे उसकी वागिन्द्रिय परिपक्व होती जाती है वैसे-वैसे वह सभी अक्षरो का उच्चारण करने लगता है।

मनोवैज्ञानिको का ऐसा अनुमान है कि १० महीना की अवस्था में बच्चा एक शब्द को बोलना जान जाता है। अन्य प्रयोगो से पता चलता है कि ५४ सप्ताह की अवस्था का बच्चा दो शब्दो का प्रयोग कर सकता है और ६६ सप्ताह मे वह संख्या ७

शब्दों की हो जाती है। अन्तमें ८६ सप्ताह के बाद उस शब्द संख्या में बहुत उन्नति हो जाती है। विचार करने पर ज्ञात होगा कि बच्चे द्वारा सर्वप्रथम उच्चरित शब्द प्रायः नित्यप्रति अनुभव करनेवाले पदार्थों का नाम रहता है जैसे, दादा, मामा, चाचा, नाना आदि। लोगों का ऐसा अनुमान है कि ऐसे शब्द के उच्चारण में अनुकरण (imitation) का विशेष हाथ रहता है। इस शब्द को संज्ञात्मक, क्रियात्मक अथवा अन्य किसी श्रेणी में रखना ठीक नहीं है क्योंकि बच्चा एक ही शब्द से कोई अर्थों का बोध करता है। यदि वह 'मामा' शब्द बोलता है तो उसके मामा शब्द का अर्थ, मा आओ, मा सुलाओ या और कुछ भी हो सकता है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि प्रायः सभी बच्चों के शब्दो में समानता (similarity) होती है और सभी एक ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हैं। हाँ, बुद्धिमान बच्चों के शब्द दूसरे प्रकार के भी होते हैं।

उसके बाद बच्चे अपनी भाषा में दो शब्दो का प्रयोग करना प्रारंभ कर देते हैं। कुछ बच्चे तो १८ महीने की अवस्था से ऐसा करना प्रारंभ कर देते हैं और कुछ दो वर्ष की अवस्था में। कुछ बच्चे तो दो वर्ष की अवस्था में सर्वनाम का भी प्रयोग अपनी भाषा मे करना सीख जाते हैं। तीन वर्ष की अवस्था के बालकों में यदि उपयुक्त वातावरण मिल जाता है तो कम-से-कम उनमे ७५ प्रतिशत बच्चे सर्वनाम का प्रयोग करना सीख जाते हैं। चार पाँच की अवस्था वाले बच्चे टेबुल, कुर्सी आदि शब्दों की व्याख्या करने में भी समर्थ होते हैं। वाक्यो

में शब्दों की संख्या बच्चे की मानसिक योग्यता पर निर्भर करती है। पहले बच्चे साधारण और सरल शब्दो का प्रयोग अपने वाक्यो मे करते है और जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती जाती है वैसे-वैसे कठिन शब्दो तथा मुहावरो आदि का प्रयोग करना अपने वाक्यो मे जान जाते है। अन्त में १०—११ वर्ष के बच्चे बहुत लम्बे-लम्बे कठिन वाक्य बोलने लगते है।

यहाँ इस बात पर प्रकाश डालना आवश्यक है कि जहाँ तक शब्द भण्डार का सम्बन्ध है उसके विषय में यह कहना पर्याप्त है कि एक वर्ष का बच्चा २-३ शब्दो को और दो वर्ष का बच्चा ३०० से कुछ कम शब्दों को जानता है। तीन वर्ष की अवस्था वाले बच्चो का शब्द-ज्ञान ६०० से कुछ कम होता है लेकिन उसके बाद शब्द भण्डार में बहुत तीव्र गति से उन्नति होने लगती है। चार वर्ष के बच्चे मे शब्द भण्डार १५००, ५ वर्ष में २००० और ६ वर्ष मे २५०० शब्द हो जाता है। उसके बाद की अवस्था के शब्दावली की संख्या को व्यक्त करना कुछ कठिन है लेकिन टरमन (Terman) महोदय का कहना है कि ८ वर्ष का बच्चा ३६००, १० वर्ष का बच्चा ५४०० और ११ वर्ष का बच्चा ७२०० शब्द जानता है। कुछ लोग इससे भी अधिक संख्या का अनुमान करते हैं।

यदि शब्द चयन पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि जब बच्चे बोलना शुरू करते हैं तो उनके वाक्यो में संज्ञात्मक शब्दो (nouns) की भरमार रहती है। प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ है कि दो वर्ष के बच्चे आधा-से-अधिक संज्ञा शब्द का ही

प्रयोग करते हैं। ५-६ वर्ष की अवस्था में क्रियात्मक शब्दों की संख्या संज्ञा शब्दों से अधिक बढ़ जाती है। फिर क्रमशः अन्य प्रकार के शब्दों (विशेषण, अव्यय आदि) का आविर्भाव होता है।

अन्त में यह कह देना अनिवार्य है कि भाषा-विकास का यह क्रम सामान्य (normal) बच्चों में ही देखा जाता है, असाधारण (abnormal) बच्चो मे नहीं। किसी प्रकार की असाधारणता (abnormality) इस क्रम को भग कर देती है।

Q. 50.—Trace the beginning of language in the incoherent babbling of children—

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ४६ का उत्तर देखिये।

Q. 51—Describe the main stages in the language development of the child.

भापा विकास को हम चार अवस्थाओं मे विभाजित कर सकते है, जैसे :—

१—प्रारंभिक अवस्था—जन्म से १ साल तक जिसमें बच्चा निरर्थक शब्दोचारण करता है।

२—दूसरी अवस्था—१ सालसे १॥ साल तक जिसमें बच्चा एक शब्दी वाक्योचारण करता है।

३—तीसरी अवस्था—१॥ साल से २॥ साल तक जिसमें बच्चा सरल वाक्योचारण करता है।

४—चौथी अवस्था—२॥ साल से आगे जिसमें बच्चा जटिल वाक्योच्चारण करता है।

इस प्रश्न की पूरी व्याख्या के लिये प्रश्न नम्बर ४६ का उत्तर देखिये।

Q. 52.—State and explain the different factors influencing the speech development in children.

भाषा विकास (speech development) में कई अंग (factors) सम्मिलित रहते हैं जिस पर की यह निर्भर करता है। लेकिन यहाँ हम कुछ प्रमुख अंगो पर ही विचार करेंगे।

अब भाषा विकास के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने के लिये यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि भाषा विकास पर अवस्था (age) का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे बच्चे की उमर बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसके भाषा विकास में भी उन्नति होती है। लेकिन यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि अवस्था मात्र ही भाषा विकास के लिये अनिवार्य नहीं है अपितु अवस्था के साथ-साथ परिपक्वता (maturation) शारीरिक क्रिया (motor skill or activity) और बुद्धि (Intelligence) आदि भी आवश्यक अंग हैं। लेकिन इतना मानना पड़ेगा कि यदि अन्य अंग सुव्यवस्थित हों तो अवस्था का हाथ भाषा विकास मे विशेष रूप से दिखलाई देता है।

प्रायः ऐसा देखने मे आता है कि भाषा विकास बच्चे के स्वास्थ्य (health) पर भी निर्भर करता है। जो बच्चा हट्टा-कट्टा होता है वह एक रुग्ण बच्चे की अपेक्षा शीघ्र बोलना सीख

जाता है। यदि स्वस्थ बच्चा भी रोगी बन जाता है तो उसकी भाषा विकासगति अवरुद्ध हो जाती है। जिस समय किसी प्रकार की नवीन शारीरिक क्रिया (motor activity) में स्थिरता आती है उस समय भी भाषा विकास कुछ समय के लिये रुक जाता है। पुनः इस क्रिया स्थापन के बाद भाषा विकास सुचारुरूप से होने लगता है। प्रयोग करने पर शारीरिक स्वास्थ्य और भाषा विकास में बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध पाया गया है।

प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ है कि भाषा विकास लड़कियो में बालको की अपेक्षा शीघ्रता से होता है। ऐसा देखा जाता है कि पाठशालीय जीवन काल में लड़कियाँ बच्चो की अपेक्षा वाक्य रचना, स्मृति तथा शब्द रचना आदि में विशेष कुशल होती हैं। उनके लेख इत्यादि को देखने से पता लगता है कि वे लम्बा-लम्बा वाक्य अथवा शब्द सरलतया बना सकती हैं जिन्हें कि बच्चे करने में असमर्थ होते हैं। यह भले ही हो कि बच्चे लड़कियो से अर्थमेटिक अधिक जान लें लेकिन भाषा सम्बन्धी ज्ञान लड़कियो को ही अधिक रहता है। इससे मालूम होता है कि भाषा विकास लड़कियों में बच्चो की अपेक्षा शीघ्र होता है। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा विकास पर लिंग (sex) का भी प्रभाव पड़ता है।

बुद्धि या मनीषा (intelligence) का प्रभाव भाषा विकास पर जानने के लिये यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि जो बच्चे अधिक बुद्धिमान होते हैं उनके भाषा विकास की गति

मन्द बालकों की अपेक्षा तीव्र होती है। बुद्धिमानी के कारण वे विकट-से-विकट परिस्थिति तथा समस्या आदि को समझने में समर्थ होते हैं और अपनी इस सूझ को दूसरों के समक्ष व्यक्त करते हैं। इसलिये उनमें भाषा विकास शीघ्रता से होता है। मन्द बुद्धि के बच्चों की समझ में तो कुछ आता ही नहीं, इसलिये उन्हें कुछ व्यक्त करने का मसाला ही नहीं मिलता और भाषा विकास देर से होता है। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि जिन बच्चों मे भाषा विकास देर से होता है वे सभी मन्द बुद्धि के ही होते हैं। जिन बच्चो मे भाषा विकास बहुत विलम्ब से हुआ है उन पर प्रयोग करके देखा गया है कि उनमें बहुत से बच्चे बुद्धिमान हैं। अतएव यह आवश्यक नहीं है कि केवल मन्द बुद्धि के बच्चों में ही भाषा विकास देर से हो, ऐसा बुद्धिमान बच्चो के सम्बन्ध में भी हो सकता है।

इस सम्बन्ध मे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि बुद्धि के कारण भाषा विकास सुचारुरूप से होता है या भाषा विकास के कारण बुद्धि में उन्नति होती है ? अभीतक इसका निर्णय निश्चित रूप से नहीं हुआ है क्योंकि प्रयोगो का निर्णय समान नहीं है। इसलिये हम यही कहना पर्याप्त समझते हैं कि ये दोनों एक दूसरे के विकास मे सहायक होते है अर्थात् भाषा विकास के साथ-साथ बुद्धि बढ़ती है और बुद्धि में उन्नति होने के कारण भाषा विकास मे भी उन्नति होती है।

अन्त में यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि भाषा विकास पर समाज का भी प्रभाव कम नहीं पड़ता। ऐसे प्रमाणों की

आज कमी नहीं है जो वातावरण के प्रभाव को व्यक्त करते हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जो बच्चे कुलीन वंश के होते हैं और जिनके माता-पिता सुशिक्षित होते हैं वे शीघ्र ही बोलना सीख जाते है। परन्तु जो मूर्ख और दरिद्र परिवार में उत्पन्न होते हैं, उनमें भाषा विकास (language development) भी देर से होता है। प्रयोग करने पर ज्ञात हुआ है कि सुसंस्कृत तथा सुशिक्षित परिवार मे उत्पन्न बच्चे का शब्द ज्ञान असंस्कृत तथा जाहिलवंश में उत्पन्न होनेवाले बच्चे से अधिक रहता है। यद्यपि इन दोनों की बुद्धि में मात्रा का अन्तर नहीं रहता तथापि भाषा विकास मे अन्तर पड़ जाता है।

इतना ही नहीं, अपितु यह भी देखने में आता है कि जिस बच्चे का सम्पर्क अपने से वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध लोगो से अधिक रहता है उसमें भाषा विकास उस बच्चे की अपेक्षा शीघ्रता से होता है जो सदा अपने से छोटे लोगों और कम ज्ञानवालो के साथ रहता है।

जिस प्रकार समाजिकता का प्रभाव बच्चे के भाषा विकास पर पड़ता है उसी प्रकार उसकी आर्थिकता (economic condition) का भी प्रभाव उस पर पड़ता है। प्रायः ऐसा देखने मे आता है कि जो बच्चा समृद्ध परिवार में उत्पन्न होता है और जिसका लालन-पालन सुख के साथ होता है उसमें उस बच्चे की अपेक्षा, जिसका लालन-पालन कठिनाइयो में होता है तथा जो दरिद्र परिवार में उत्पन्न होता है, भाषा विकास शीघ्रता से होता है।

यद्यपि इन अंगों के अतिरिक्त और भी कितने अंग (factors) है जिनका प्रभाव भाषा विकास (language development) पर पड़ता है लेकिन उन पर प्रकाश डालना हम आवश्यक नहीं समझते, क्योंकि वे उनके प्रमुख नहीं है जितने की उपयुक्त अंग हैं।

CHAPTER 11

SOCIAL DEVELOPMENT

(सामाजिक विकास)

Q. 53.—What are the main social responses that you observe in the child during the early years of life ? How far does environment affect social development ?

बच्चे के सामाजिक विकास (Social development) का वर्णन करने के लिये यह ध्यान मे रखना जरूरी है कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उस समय वह सामाजिक (Social) वा असामाजिक (Anti-Social) कुछ भी नही रहता। किंतु ज्यों-ज्यों वह बढ़ता जाता है त्यो-त्यो उसमें सामाजिकता आती जाती है। नवजात शिशु (New born child) मनुष्य और पशु में किसी प्रकार का अन्तर नहीं समझता। वह वाह्य विश्व की सत्ता को भी नहीं जानता बल्कि अपने आप मे तल्लीन रहता है। लेकिन यह अवस्था बहुत दिन तक नही रहती। क्योंकि थोड़े ही दिनों के वात अनुभव एवं विवृद्धि के कारण सामाजिक वन जाता है। बच्चों का समाज विकास (social

development) पूर्णतः सयानों पर अवलम्बित रहता है। जो बच्चे सयानों के सम्पर्क में नहीं रहते उनमें समाज विकास भी बहुत विलम्ब से होता है। इस समाज विकास का आविर्भाव बच्चों में उनकी शारीरिक आवश्यकताओं (physio-logical need) के फलस्वरूप आता है जब बच्चा को माता-पिता खिलाते-पिलाते वक्त उनके शारीरिक अवयवों की रक्षा करते वक्त किसी प्रकार से उत्तेजित (stimulate) करते है तो वह उन्हींकी प्रतिक्रिया (response) करता है। पहले बच्चा जिनके सम्पर्क में आता है उनके मुखमण्डल या शब्द (voice) की तुलना अन्य लोगों के शब्द वा मुखमण्डल (face) से करता है। कुछ दिनो में वह प्रेममय और क्रुद्ध शब्दो मे भी अन्तर पाने लगता है। एक महीने की अवस्था में वह मनुष्य के शब्द और अन्य चीजो के शब्दो में अन्तर समझने लगता है। दो महीने की अवस्था में वह परिचित व्यक्तियो को देखकर मुस्कुराना प्रारम्भ करता है। प्रारम्भ से उसकी सभी प्रतिक्रियायें भावात्मक (positive) होती है किंतु पश्चात् में निषेधात्मक प्रतिक्रियाओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। छः महीने मे शक्ल देखकर किसी को पहचानने मे समर्थ हो जाता है। बुहलर का कहना है कि बच्चे तीन महीने की अवस्था मे दूसरो की भावभंगिमा (facial expression) को समझने मे असमर्थ होता है।

इसलिये उस समय उसकी प्रतिक्रिया भावात्मक ही होती है। पाँच महीने की अवस्था में किसी के क्रुद्ध मुखमण्डल को देखकर निषेधात्मक प्रतिक्रिया करने लगता है। आठ महीने

की अवस्था में बच्चा परिचित क्रोधी व्यक्तियों की गोदी में न जाकर हँसते हुये व्यक्ति के पास चला जाता है। लेकिन इसमें व्यक्तिगत अन्तर होता है। कुछ बच्चे अपनी माता को एक महीने में ही पहचान जाते हैं तथा कोई-कोई चार पाँच महीने में ऐसा कर पाता है। जो माँ बच्चो के अधिक निकट रहा करती है उसे तो बच्चे जल्द पहचान लेते हैं किंतु जो, दूर रहती है उसे नही पहचानते। थोड़े शब्दों मे हम कह सकते हैं कि एक से दो महीने का बच्चा सयाने को देखकर मुस्कुराता है जब उसे स्पर्श देते हैं तो शांत हो जाता है। जब दो से तीन महीने के बच्चे को छोड़कर चले जाते है तो वह चिल्ला उठता है। आठ महीने का अपनी बाहो को दूसरे की गोदी में जाने के लिये फैलाता है। नौ से दश महीने का बच्चा सयानो का कपड़ा खींचता है एव उसका अनुकरण भी शुरू कर देता है।

चार पाँच महीने के बच्चे अन्य बच्चो की परवाह नहीं करते किंतु उसके बाद जब दूसरे बच्चे रोते हैं तो उसको बहुत ध्यान से सुनने लगते हैं। बारह महीने की उम्र मे एक दूसरे के साथ खेलना शुरू कर देता है तथा झगड़ना भी। नौ से चौदह महीने तक के बच्चे अन्य बच्चो की अपेक्षा अपने खिलौने पर अधिक ध्यान देते है। लेकिन दूसरे वर्ष में पदार्पण करने पर उसमें सामाजिकता की विशेष रूप मे विवृद्धि हो जाती है। वे खेलनेवाले बच्चे पर ध्यान देने लगते हैं खिलौनो पर उनका ध्यान कम होता जाता है।

इसी वर्ष में वे एक दूसरे के सहयोगी भी बन जाते हैं। दो वर्ष की अवस्था में वे साधारण खेलों में सहयोग देने लगते हैं तत्पश्चात् बच्चों में सहानुभूति की भी भावना हो जाती है तथा कुछ अपनी प्रधानता के लिये भी कोशिश करते है। जिन बच्चो का लालन-पालन सहानुभूतिपूर्ण वातावरण मे होता है वे तो अन्य बच्चों के प्रति सहानुभूति दिखलाते है पर अन्य मे नही। (pre-school children) मे वाताबहस भी हो जाता है तथा वे अपनी जगह पर बैठने के लिये झगड़ने लगते है। दो से तीन वर्ष की अवस्थावाले बच्चो मे स्पर्धा की भावना भी आ जाती है कुछ मे कम मात्रा में और कुछ मे अधिक यह भावना सामाजिक वातावरण के कारण होती है। जहाँ सांस्कृतिक अन्तर (cultural difference) होता है वहाँ स्वार्थ की भावना नहीं होती।

जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते है तब उनके सामाजिक विकास के लिये अवसर मिलता है बच्चो मे झगड़ना जैसे, गाली फसाद, नकल करना आदि। प्रारंभिक अवस्था में बच्चा अपने ही कार्य मे तल्लीन रहता है लेकिन वही जब वर्ग मे विभाग कर दिया जाता है तो वह वर्ग के काम में मनोयोग देने लगता है तथा एक दूसरे को सहयोग प्रदान करने लगते हैं, किंतु सभी बच्चो मे ऐसा नही होता। आठ और दश वर्ष की अवस्था मे बच्चे समूह में रहना अच्छा समझते हैं। गाँव से अलग मैदान आदि मे समुदाय रूप मे खेला करते हैं क्योंकि उस समय उनके संरक्षकों का भार उनपर नही रहता है। इस समूह की सबसे

बड़ी विशेषता यह होती है कि बच्चे, बच्चे के साथ तथा बच्चियाँ बच्चियों के साथ खेलती हैं तथा वे एक दूसरे से मिलना नहीं चाहते है। जिन बच्चो का लालन-पालन समुचित रूप से हुआ रहता है उनके सामूहिक खेल समाज विहित होते हैं किंतु जिन बच्चो में किसी प्रकार की त्रुटि रहती है उनके खेल समाज कल्याण के प्रतिकूल होते हैं।

अब सामाजिक विकास (social development) मे वातावरण का प्रभाव व्यक्त करने के लिये इसका उल्लेख कर देना आवश्यक है कि बच्चे का सामाजिक विकास पूर्णतः वातावरण (environment) पर ही निर्भर करता है। ऐसा कदापि नहीं होता कि जिस बच्चे का वातावरण ठीक न हो उसका समाज विकास वांछनीय हो। जिस वंश के लोग बच्चो का लालन-पालन सुख और शान्ति मे करते हैं वे बच्चे दूसरो के साथ सहानुभूति दिखलानेवाले तथा सहयोग प्रदान करनेवाले होते हैं। जिस परिवार के माता-पिता स्नेह सम्बन्ध में बँधे रहते हैं तथा गुणी होते हैं उनके लड़कों का सामाजिक विकास भी उसी प्रकार समाजोपयोगी होता है। किंतु जिस बच्चे का वातावरण कलह, झगड़ा और चोरी से परिपूर्ण रहता है वह बच्चा भी उसी प्रकार का झगड़ालू, निर्दयी और बुरा बन जाता है। बच्चे का सामाजिक जीवन पूर्णतः बराबर रहने वाले सयानों पर ही निर्भर करता है। इसलिये माता-पिता तथा अन्य भावुकों का यह परम कर्त्तव्य है कि बच्चो का लालन-पालन सुन्दर-से-

सुन्दर वातावरण में स्नेह और प्यार के साथ करें क्योंकि 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति" ।

Q. 54.—Trace the development of social life of children during the first few years of life.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५३ का उत्तर पढ़िये ।

Q. 55—When does the child begin to react socially ? Indicate some forms of early social reactions of the child.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५३ का उत्तर देखे ।

Q. 56.—Indicate the main stages of the social development of the pre-school child.

यो तो बच्चो का समाज विकास (social development) इनके जन्मकाल से ही प्रारम्भ होता है एवं बहुत दिनों तक प्रचारित रहता है लेकिन यहाँ हम उनकी (pre-school) अवस्था (stage) के सामाजिक विकास के विभिन्न पहलुओं (different stages) पर संक्षिप्तत: प्रकाश डालेंगे । हाँ, तो इस अवस्था के बच्चे के समाज विकास के वर्णन करने के लिये इस बात को याद रखना चाहिये कि ज्यो-ज्यो बच्चे में उम्र की विवृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों उनका दृष्टिकोण समाज के प्रति भी बढ़ता जाता है । अब वे समुदाय मे रहना पसन्द करते हैं । अपने खेल मे साथ देनेवाले साथी (playmates) के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने लगते हैं । अब इन सब मामलो में उनका व्यक्तिगत विकास शुरू हो जाता है ऐसा मर्फी महोदय का अध्ययन है । इस अवस्था में कुछ लड़के बिना

आक्रमणशील (agressive) हुये ही सहानुभूति दिखाने की परिचेष्टा करते हैं। इस समय में बच्चो में झगड़ने की भावना आ जाती है। किन्तु यह भावना वहाँ पर कम हो जाती है जहाँ पर उन्हें खेल-कूद की पर्याप्त सुविधा (facilities) प्राप्त होती है। इसके विपरीत जहाँ उन्हें यह सुविधा पाने मे दिक्कत होती है वहाँ उनमें इस भावना में अधिकता हो जाती है। इस बात की सत्यता प्रस्थापित करने के लिये "जेरसिल्ड", "मार्की" आदि मनोवैज्ञानिको ने nursery school में पढ़नेवाले लड़को का निरीक्षण किया तो देखा कि वहाँ के लड़को में झगड़ने की भावना एवं आक्रमणशील व्यवहार (agressive behaviour) पर्याप्त परिमाण में था। इसका कारण यह था कि वह स्कूल एक मकान के ऊपर की मंजिल पर स्थापित था जिससे वहाँ उनके खेलने मे अधिक सुविधा नहीं मिलती थी जिसके फलस्वरूप उनमे उपर्युक्त व्यवहार एवं भावना का अविर्भाव हुआ। उन्होंने इस बात को भी देखा कि वैसा स्कूल में जहाँ लड़कों को खेलने के लिये खुले मैदान थे, इन भावनाओ की बहुत कमी थी।

मार्फी तथा न्यूकाम्ब आदि मनोवैज्ञानिक बच्चो पर किये गये अनेक: प्रयोगों के report का गूढ़ अध्ययन कर निम्नलिखित तथ्य पर आये। उनका कहना है कि दो से पाँच साल के बच्चों में नाना प्रकार के सामाजिक व्यवहार का प्रादुर्भाव होता है। इस समय बच्चे में आज्ञापालन की क्षमता आ जाती है। अपने अध्यक्ष के प्रति नम्र (submissive) होना

सीख जाते हैं तथा किसी प्रकार की आज्ञा (command) देने पर नम्रता पूर्वक उसे पालन करना भी सीख जाते हैं। इस काल में बच्चे समुदाय में रहने में अपनी अभिरुचि (interest) दिखलाते हैं तथा उनकी यह भी इच्छा होती है कि समुदाय भी उनके ऊपर अपना ध्यान (attention) रक्खे। यों कहिये कि उस समय वह सतत अपने-अपने समुदाय मे संलग्न रहता है। इस समय वह पूर्णतः सयानों (adults) पर निर्भर (depend) करता है। कारण यह है कि इस समय वह अपनी क्रिया (own activity) करने में स्वय असमर्थ रहता है अतः सयाने की सहायता की उसे आवश्यकता रहती है, जिससे वह अपनी क्रिया प्रतिपादन कर सके। इस अवस्था में बच्चा स्वयं बड़ा कोमल (tender) रहता है। अतः इसे प्यार करने के लिये सभी इच्छुक हो जाते हैं तथा बच्चा भी उसकी इच्छा (fondness) रखता है। अब वे एक दूसरे को सहयोग देने लगते हैं तथा एक दूसरे के साथ-खेलने लगते है। हाँ, यह द्रष्टव्य है कि इस समय बच्चे का खेल प्रायः सम्मिलित (jointly) रूप मे ही होता है। इसी समय उनमे दूसरे के अधिकार (right) की इज्जत करने की भावना जाग्रत होती है तथा दूसरे लड़को की चीजो को जिसपर उसका अधिकार या दखल (possession) रहता है समझने लगता है। धीरे-धीरे अन्य सामाजिक कार्यों में भी हाथ बटाने लगता है। अब उससे सामाजिक व्यवस्था (organisation) के प्रति जबावदेही (responsibility) आ जाती है। इस समय उन्हें

सामाजिक नियमों को पालन करते पाया जाता है, कोई-कोई तो नियमो के बनाने में भी सहायता करते हैं। इस अवधि में उसमे दूसरों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने की क्षमता आ जाती है। अब वह किसी दूसरे के संवेग (emotion) से प्रभावित होने लगता है, जैसे, दूसरे बच्चे के दुःख से दुखी होना, उसे हँसाने की परिचेष्टा करना, दूसरो के साथ आनन्दानुभव करना, और उसके साथ हँसना आदि। इस समय तक उसमे अपनी चीजो (property) को अपना (own) समझने की योग्यता हो जाती है। जिस चीज को वह स्कूल ले जाता है उसे अपना समझ कर उसकी रक्षा करता है। अपनी चीजो से खेलने लगता है दूसरे बच्चे के माँगने पर वह यह समझ की कोशिश करने लगता है कि यह चीज उसे देना उचित है या नहीं। कहने का मतलब यह है कि अब उसमे उचितानुचित विचारने की काबिलीयत हो जाती है। हमे यह समझने में भूल न करना चाहिये कि इस समय बच्चों में बौद्धिक विकास (intellectual development) शुरू हो जाता है। जिसका एक मात्र कारण उनकी उम्र की विवृद्धि एवं शिक्षा है।

उपर्युक्त विवेचना को यदि ब्रिज महोदय के scale के मुताबिक जाँचा (judge) जाय तो हम देखेंगे कि बालक अपने pre-school जीवन मे जैसे-जैसे बढ़ते हैं वैसे ही वैसे उनमे समाजिक विकास होता जाता है। यहाँ पर हमे यह न भूलना चाहिये कि उनके सभी विकास होते हैं खेल मे रहने वाले बच्चो (playmates) के साथ मे ही। इसके अन्तर्गत

उनका दूसरे बच्चों के साथ खेलना, उनके साथ बोलना, किसी की प्रार्थना पर खिलौना आदि देना, अपनी बारी (turn) आने के लिये स्थिर रहना (wait), दूसरो की सहायता करना तथा उसके दुःख में सांत्वना देना, आदि चला आता है। ये तो हुये उनके भावात्मक (positive) विकास, किंतु जब हम उनके निषेधात्मक (negative) विकास पर ध्यान देते हैं तो उसके अन्तर्गत हमें निम्नांकित भावनाये मिलती है। वे दूसरों के खिलौने पर अपना अधिकार (claim) नहीं जमाते। दूसरो के काम मे दखल (interfere) नहीं करते। दूसरो का धक्का नहीं देते तथा दूसरे को अनावश्यक तकलीफ नहीं देते-आदि। यहाँ इतना अवश्य समझना चाहिये कि बच्चे का सामाजिक विकास (social devolopment) ठीक इसी तरीके पर नहीं होता। किंतु, हाँ, उचित रूप से देख-भाल (guide) करने पर उनमे इन सामाजिक प्रतिक्रियाओ का क्रमशः विकास होता है। कई प्रकार से अध्ययन करने पर यह चला है कि बालकों का जो nursery school मे उपस्थिति (attendance) पुकारी (call) जाती है उससे उनके सामाजिक विकास पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। उनके इस तरह के विकास का कारण निसन्देह रूप से उनका सामाजिक वातावरण तथा समुचित निरीक्षण (guidance) ही है।

ऊपर की गई व्याख्या के बाद अब हमें यह समझने में गलती न करनी चाहिये कि चार से पाँच वर्ष के लड़के (pre-school children) की हँसी (laughter) एवं चिल्लाने; रोने

(crying) की क्रियाएँ बड़ी महत्वपूर्ण (significant) है। यही एक साधन है जिससे हम उनके सामाजिक विकास का अध्ययन करने में अपने को समर्थ बना पाते हैं। दो वर्ष से अधिक उम्र में बच्चे तभी हँसते हुये दीख पड़ते हैं जब वे अकेले रहते हैं वा जब यह समझते है कि हम अकेले हैं। कालान्तर मे इसी चीज में परिवर्त्तन हो जाता है, अब बच्चे तभी हँसते हैं जब अपने समवयस्कों के बीच रहते हैं। बैंकेट महोदय के अनुकूल बच्चे दूसरे बच्चे के साथ रहने पर ही अधिक हँसते वा चिल्लाते (cry) हैं। कभी-कभी बच्चे खिझाने (tease) पर वा हँसने पर भी अधिक हँस वा रो देते हैं। इस समय वातावरण के आधार पर ही मैत्रीभाव (friendliness) वा अमैत्री भाव (unfriendliness) का आविर्भाव होता है। अतः किसी-किसी समय में जहाँ वह अपने हित की बात अपनी समझ (experience) मे समझ पायगा वहाँ मित्रतापूर्ण व्यवहार करेगा किंतु वही जब अन्य वातावरण, अनुभव (experie-nce) की कमी के कारण न समझ पायेगा तो वैसा व्यवहार न प्रदर्शन करेगा। इस समय मनुष्य ही उसका वातावरण है। क्योंकि उसे खाने, पीने, सोने आदि के लिये दूसरे व्यक्ति पर ही निर्भर (depend) करना पड़ता है।

यों तो हम बालकों को जितनी ही सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करेंगे उतने ही तथ्यो (truths) का भी पता चलेगा लेकिन अब हम इतना ही कह कर खतम करेंगे कि इस समय तक उनमें सामाजिकता की गंध अवश्य ही आ जाती है तथा शिक्षा एवं निरीक्षण के आधार पर दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

Q. 57.—Show how the mental life of a child is influenced by parent's behaviour ?

बच्चों के जीवन में माता-पिता के व्यवहार (parent's behaviour) का जो असर पड़ता है उसकी व्याख्या करने के पूर्व हमें यह जान लेना चाहिये कि जन्म के समय सभी बच्चे असहाय होते हैं। उनके माता-पिता ही उस समय उनकी हर तरह से सहायता करने में समर्थ हो सकते है अन्यथा दूसरा कोई भी नहीं कर सकता। अतः इस समय बच्चे का वातावरण उनके माँ-बाप ही रहते हैं। इस समय उनका मस्तिष्क plastic रहता है अतः उनमें अनुकरण करने की शक्ति बहुत ज्यादा रहती है। इस अवस्था में उनके साथ जैसा व्यवहार प्रदर्शन किया जाता है उसका जबर्दस्त प्रभाव उसके चरित्र पर पड़ता हैं। हाँ, उनका विकास कालान्तर में चलकर शिक्षा एवं आयु की विवृद्धि की सहायता से होता जाता है। कहने का मतलब यह है कि बच्चो के अचेत (unconscious) मानस क्षेत्र में उन व्यवहारों का जिनका प्रदर्शन उनके साथ किया जाता है। बीजारोपण उसी दिन से हो जाता है। अब शायद हमें यह समझने मे दिक्कत न होगी कि बच्चो के मानसिक जीवन (mental life) पर उनके माता-पिता के व्यवहार का क्या असर पड़ता है।

यो तो सभी माता-पिता अपने बच्चो के साथ समुचित व्यवहार प्रदर्शन करते हैं किन्तु सुयोग्य एवं सुनागरिक माता-

पिता बच्चों का हर तरह से सहायक बनने की कोशिश करते हैं। यों तो माता-पिता एवं बच्चो के आपसी सम्बन्ध के विषय में तो कोई व्यावहारिक प्रमाण देना मुश्किल ही है किंतु इतना कहना अनुचित न होगा कि ऐसे माँ-बाप अपने बच्चे के साथ क्रिया (activity) करते है। कभी-कभी अपनी इच्छा की पूर्त्ति बच्चे से करने को कहते हैं तथा उसकी इच्छा की पूर्त्ति स्वयं करते हैं। बच्चे को काम करने के लिये उत्तेजित करते हैं तथा आत्म-विश्वास की भावना में बढ़ावा (encourage) देते हैं। कितने सुशिक्षित पिता अपने बच्चो के अनुभव मे भी हाथ बँटाते हैं। उनके कार्य्यों में समुचित (sincere) सहायता एवं अभिरुचि (interest) प्रदान कर उनकी सहानुभूति की (good will) उपलब्धि करते है। कितने माता-पिता तो बच्चों के आनन्दोत्पादक अभिरुचि (recreational interest) मे भी हाथ बँटाते हैं, जैसे, तैरना, टिकट (stamp) जमा करना आदि।

यदि कोई लड़का ऐसे माँ-बाप से गाना सीखने की अभिरुचि दिखलावे तो वे तुरत उसके लिये समुचित सहायता एवं हर तरह से सुविधा देने को तैयार हो जायेंगे।

बुद्धिमान माता-पिता बच्चो को अपने काम (problem) स्वयं सिद्ध (solve) करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। एब्राहम लिंकन बचपन में ही आत्म-निर्भरता की शिक्षा पाने मे समर्थ हो पाया था जो आगे चलकर उसके उन्नति का प्रधान कारण सिद्ध हुआ।

हेवलाक एलिस महोदय का कथन है कि इसका कोई भी

कारण नही कि बच्चे एवं माता-पिता के पारस्परिक प्यार (affection) एवं निरीक्षण (care) में कभी भी कमी आवे।

किंतु, हाँ, इसका मानी यह नहीं कि बच्चे के साथ माता-पिता का परम कर्त्तव्य केवल प्यार का निरूपण करना ही है। इसलिये तो हमारे ऋषि, महात्माओं ने इसके लिये एक नियम ही बना दिया है, जिसमें पिता-माता का कर्त्तव्य अपने बच्चे के साथ क्या होना चाहिये इसको बतलाया गया है। उनका कहना है कि—

लाड़येत पञ्चवर्षाणि, दशवर्षाणि च ताड़येत्।
प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

उपर्युक्त श्लोक से यह स्पष्ट हो गया कि माता-पिता का आदर्श बालको के प्रति कैसा होना चाहिये। किंतु अब यहाँ हम समाज मे प्रायः घटित होनेवाले व्यवहारो पर दृष्टिपात करेंगे। ऊपर की बातें तो केवल सुशिक्षित माता-पिता के साथ ही लागू होती हैं। पर इसमें संदेह नही कि हर माता-पिता समान नही होते। सबो मे भेद अवश्य ही होता है। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं तो देखते हैं कि कितने मूर्ख पिता बच्चे को छोड़ देते (reject) हैं यानी उस पर अपना ध्यान नहीं देते हैं। इसका कारण यह है कि वे मूर्खतावश यह समझने लगते हैं कि उनकी स्त्री यानी उस लड़के की माँ का ध्यान अब उसी लड़के पर केन्द्रित हो गया है। अतः वे उससे जलने लगते हैं। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बच्चे अपने पिता से डरने लगते हैं। उनके नजदीक जाना पसन्द नही करते तथा अपनी श्रद्धा किसी

दूसरे व्यक्ति के साथ दिखलाने की चेष्टा करने लगते हैं। कभी-कभी तो इस तरह के बच्चे का ध्यान निश्चयात्मक रूप से उनकी माँ पर स्थिर हो जाता है। जिससे आगे चलकर उनके सामाजिक विकास में बड़ी क्षति पहुँचती है। इस तरह के पिता अपने बच्चे में अक्सर त्रुटियाँ (short comings) ही पाते हैं। छोटी सी गलती के लिये भी कठिन दण्ड प्रदान करते हैं। वे उसे दुखी बनाये रहते हैं। जब उन्हें इन सब कार्यों को ठीक करने में दिक्कत मालूम होती है तो वे उसे किसी संस्था में भेज देते हैं। वे उसकी आर्थिक सहायता करने से मुँह मोड़ लेते हैं तथा जान बूझकर (deliberately) उसे डराने की कोशिश करते हैं।

साइमन के मतानुकूल इस प्रकार के बच्चे मे निम्नलिखित प्रकार के सामाजिक व्यवहार पाये जाते हैं। ऐसे बच्चे मे दूसरे के साथ मैत्रीभाव नहीं उपजता। वह स्वार्थी बन जाता है। वह अपने अध्यक्ष (authority) के प्रति सहानुभूति नहीं रखता। वह हीनता की भावना (inferiority complex) से प्रेरित रहता है। वह हतोत्साही हो जाता है। अपने स्वार्थ में ही सतत संलग्न रहता है। उसे अविश्वास अधिक होता है। अपने भविष्य के लिये कुछ भी नहीं कर पाता। जो भी वह करता है वह गलत ही होता है।

कोई-कोई माता-पिता तो ऐसे होते हैं कि वे बच्चे को बिलकुल छोड़ तो नहीं देते पर अपने प्रभावपूर्ण (dominant) व्यवहार का प्रदर्शन अपने बच्चे पर ही करते है जिसका असर

भी उस पर बुरा ही पड़ता है। ऐसे पिता अपने बच्चे को अक्सर डॉटते रहते हैं। साथ-साथ दंड देने की धमकी भी देते है। उसे कोड़े से पीटते हैं। उसे unsuitable स्थान पर रख देते हैं। बच्चे के सभी कार्य्यों वा व्यवहारों की आलोचना किया करते हैं। ऐसे बच्चे अक्सर लजीला हो जाते हैं।

बालको के प्रति पिता के व्यवहार की व्याख्या कर लेने के बाद अब हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि उन पर माता के व्यवहार का कैसा असर होता है। इस बात पर विचार करते समय हम देखते हैं कि पिता के प्यार से वंचित होकर बच्चा माता के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध जोड़ लेता है। माँ उसे अपने साथ ही वर्षों तक सुलाती और खिलाती रह जाती है। इसमे वह उसके लिंग भेद (sex) की परवाह नहीं करती तथा यह बच्चे को भी बहुत प्यारा लगता है। माँ, बच्चे का दीर्घकाल तक निरीक्षण करती रहती है। वह, उस समय भी बच्चे को बहुत दिनतक नहलाना, कपड़ा पहनाना आदि का काम करती है जब कि बच्चा अपने भी इस काम को खुद भी कर सकता था। अतः उसमें आत्मविश्वास की भावना में क्षति पहुँचती है। वह बच्चो की हर क्रिया का देखभाल करती रहती है तथा उसके अधिकतर कार्य्यों को स्वयं कर देती है। अपने घर से बाहर व्यक्तियो के आघात से वह सदा बचाने की कोशिश करती है। कोई-कोई माँ या तो अत्यधिक संलग्न रहती है अपने बच्चों में, या उससे बिलकुल सख्ती से व्यवहार करती है। ऐसे लड़कों का अध्ययन किया गया तो पता चला कि उन्हें

अपने समाज में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है। उन्हें अनावश्यक सहायता की आवश्यकता रहती है जिससे उनके जीवन में आनन्दानुभव नहीं होता। वे स्वतंत्ररूप से जीवन बिता नहीं सकते।

कोई कोई माता-पिता अपने बच्चे से कुछ पाने की इच्छा से, बिना उसकी इच्छा के भी किसी व्यवसाय में लगा देते हैं। जिसके फलस्वरूप बच्चे का जीवन दुःखमय हो जाता है। अतः अभिभावकों को उचित है कि अपने सुन्दर व्यवहार के बल पर बच्चों की अभिरुचि का अध्ययन करें तब उन्हें किसी व्यवसाय में जाने की राय दें।

उपर्युक्त विवेचना से हम देखते हैं कि किस तरह बालकों का जीवन उनके अभिभावकों (parents) के व्यवहार पर निर्भर करता है। जिस तरह का भी व्यवहार वे बच्चों के साथ प्रदर्शित करेंगे उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप बालकों में भी सामाजिक व्यवहार का प्रादुर्भाव होगा।

Q. 58.—Describe the nature of the child's contact with adults and with other children.

बच्चे के सयानों के साथ सम्पर्क (contact) के स्वरूप (nature) को वर्णन करने के लिये यह व्यक्त कर देना जरूरी है कि नवजात शिशु अपने वातावरण के मानुषिक (human) एवं अमानुषिक (non-human) पहलुओं में भेद करने से सर्वथा असमर्थ रहता है। हाँ, अपने जीवन के दूसरे महीने के शुरू में बच्चों में सयानों के प्रति विशिष्ट प्रतिक्रिया का प्रादुर्भाव

होता है। इस समय जब माँ या दाई (nurse) बच्चों से बोलती है तो वे मुस्करा देते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि बालकों में सर्वप्रथम (first) सामाजिक प्रतिक्रिया (social reaction) मुस्कराने की होती है। बुहलर के मुताबिक बालकों को दूसरे मनुष्य के साथ जो प्रतिक्रिया होती है वह भावात्मक (positive) होती है। कालान्तर मे उनमें अभावात्मक (negative) प्रतिक्रिया का भी आविर्भाव होता है। जीवन के पहले साल मे साधारणतः उनमें भावात्मक (positive) सामाजिक प्रतिक्रिया ही पायी जाती है।

पहले बालक दयापूर्ण एवं क्रोधपूर्ण बातों को समझने में असमर्थ रहता है। किंतु ज्यों-ज्यो उसकी आयु मे वृद्धि होती है त्यो-त्यो वह मानव की आवाज में भेद समझने लगता है। जब बुहलर एवं हटजर आदि मनोवैज्ञानिकों ने इसका निरीक्षण सूक्ष्मरूप से किया तो उन्हे पता चला कि बच्चे सयानो के शब्दो की प्रतिक्रिया (reaction) करते थे। अब वे किसी की दयापूर्ण एवं क्रोधपूर्ण बातो तथा विभिन्न भावभगी की भी प्रतिक्रिया करते थे। पाँच महीने तक बच्चे इन मुखाकृति एव शब्द (voice) के विरुद्ध प्रकाशन (diverse expression) के फलस्वरूप विभिन्न प्रतिक्रिया करने मे असमर्थ रहते हैं।

सातवे महीन मे विद्वेषी (unfriendly) प्रकाशन से बच्चे मे चिल्लाने (crying) वा मुस्कराने की भावना उत्तेजित होती है।

बुहलर महोदया ने बालकों की सामाजिक प्रतिक्रिया का बहुत ही सुन्दर ढंग से व्याख्या की है। उन्होंने अपनी व्याख्या की सत्यता प्रस्थापित करने के लिये उनहत्तर बालकों का निरीक्षण किया, जिनकी उम्र प्रायः एक से बारह महीने तक थी। उन्होंने देखा कि एक से दो महीने की उम्र वाले बच्चों में से साठ प्रतिशत बच्चे, सयानो के दृष्टिपात करने के उत्तर स्वरूप मुस्कुरा देते थे। जब उन्हें स्पर्श किया जाता था तो शांत (quiet) हो जाते थे। इसी तरह जब उनके नजदीक में बोला जाता था तो अशांत (restless) हो जाते थे तथा जब वह सयाना (adult) जो उन पर ध्यानावस्थित था, हट जाता था तो जोर से चिल्ला उठते थे। दो और तीन महीने के बीच में कोई-कोई बच्चा सयानो के दृष्टिपात करने पर पुनरुक्ति (lalling) की प्रतिक्रिया भी करता पाया गया था। तीन और चार महीने के बीच के बालक सयानो की दृष्टि अपने ऊपर से हट जाने पर दुख प्रकट करते थे एवं थपथपाने (caressing) पर शांत हो जाते थे। सात, आठ महीने की उम्र के बालको में कोई भी नयी सामाजिक प्रतिक्रिया नहीं पायी जाती। इस वक्त बच्चे अपने ऊपर सयानो का ध्यान लगाने के लिये पुनरुक्ति (lalling) करते, अपने हाथों को फैलाते तथा कभी-कभी जोर-जोर से चिल्लाने लगते थे। नवें (ninth) महीने में बच्चे में कई प्रकार की सामाजिक प्रतिक्रियाओ की विवृद्धि होती है। इस समय बच्चा अपने मे गति उत्पन्न करके अपनी ओर दूसरे का ध्यान खींचना चाहता है।

कभी-कभी तो वह अपनी ओर आकर्पित करने के लिये दूसरे के कपड़े को भी खींचता है। दशवें महीने में बच्चा अपना खिलौना सयानों को देकर उनके साथ खेलने की परिचेष्टा करता है। ग्यारहवें बारहवें महीने में बच्चो की सामाजिक प्रतिक्रिया मे किसी प्रकार की कमी-वेशी देखने को नहीं आती। तत्पश्चात् बच्चो मे क्रमशः अन्य प्रतिक्रियाओ का आविर्भाव उनकी शिक्षा एवं उम्र के आधार पर हो जाता है।

बालकों की प्रतिक्रिया, सयानों के संबंध मे विचार कर लेने पर यह उचित होता है कि उनकी प्रतिक्रियाएँ उनके समवयस्कों के साथ कैसी होती है, इसपर भी विचार किया जाय। इस विषय पर विचार करने के पहले यह स्मरणीय है कि बालक अपने जीवन के प्रथम साल में सयानो से ही अपना सम्पर्क रखते हैं, बच्चों से नहीं। दूसरे बालक, बालको के सामाजिक विकास में नगण्य (insignificant) स्थान रखते हैं। बुलहर महोदय ने देखा कि छः महीने की उम्र के जब दो बच्चे एक साथ रख दिये जाते हैं तो वे एक दूसरे के विषय में कुछ भी जानकारी नहीं रखते या वे एक दूसरे के प्रति कुछ भी क्रियाशील व्यवहार का प्रदर्शन नहीं करते। चार या पाँच की अवस्था मे दो बालकों में प्रथम बार सामाजिक सम्पर्क देखा जाता है। प्रायः छः महीने की अवस्था में बालक एक दूसरे को देखते, तथा देखकर हँसते हैं। आठ, नौ महीने की अवस्था के बालको में निम्नलिखित प्रतिक्रियायें पाई जाती हैं। इस समय बच्चे अपना खिलौना दूसरे बच्चे को देते है, पुनरुक्ति

(calling) द्वारा बोलने का प्रयास करते तथा दूसरे लड़के के कार्य्यों का अनुकरण करने की कोशिश करते हैं। दश महीने की उम्र के बाद बच्चा दूसरे बच्चे के कपड़े को पकड़कर खींचना, नोंचने (snatch) की परिचेष्टा करना, तथा अपने खिलौनों की रक्षा करना जान जाता है। हाँ, इतना कह देना यहाँ उचित होगा कि उनके सामाजिक व्यवहार में व्यक्तिगत भेद अवश्य होता है। जीवन के प्रथम साल में दो बालकों के बीच सम्पर्क होते देखा जाता है। जीवन के दूसरे साल के मध्य में बालक तीन-तीन बच्चों के समुदाय में खेला करते हैं। उम्र की वृद्धि के अनुसार ही उनके समुदाय के सदस्यों की संख्या भी बढ़ती जाती है। बालकों के इस तरह के साहचर्य्य का प्रधान कारण उनके खेल में सहायता की जरूरत है। इस समय बच्चों का किसी वस्तु (material) या खिलौने में सामान्य अभिरुचि (common interest) रहती है।

ब्रिज महोदय ने दो से पाँच साल तक के बच्चों के सामाजिक विकास का निरीक्षण किया। उन्होंने देखा कि इस उम्र में बच्चे प्रथम समाज से विमुख हो जाते हैं फिर उनमें अपने में प्रधानता लाने की इच्छा होती है। इस इच्छा से प्रेरित होकर उनके हृदय में दूसरे के प्रति दया एवं सहानुभूति का स्थान भी हो जाता है। जब तीन से छः साल के बीच बच्चे "किंडर गार्टन" स्कूल में जाते हैं तो वे बालसंसार के सदस्य बन जाते हैं जहाँ प्रायः सभी उन्हीं की उम्र के लोग रहते हैं। यही बाल संसार घर के बाहर वातावरण बन जाता है। इस उम्र

के बच्चे प्रायः एक मित्र रखते हैं तथा कभी-कभी दो भी। किंतु इनकी मित्रता क्षणभंगुर होती है। चार साल की उम्र में अपनी मर्यादा के लिये होड़ (competition) की भावना देखी जाती है। कभी-कभी इनमें स्थायी मित्रता भी देखी जा सकती है। हाँ, यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि दो से पाँच वर्ष के बच्चों में सयानों के साथ, तीन अवस्थायें हैं। पहले आश्रित अवस्था (dependent stage) में बच्चे निष्क्रिय-सा हो जाते हैं तथा सयाने होने पर सहायता के लिये विश्वास करते हैं। दूसरी अवस्था, जो ढाई तीन वर्ष की अवस्था में आती है, इसमें बच्चे स्वतंत्रता पाने एवं शक्ति (power) के इच्छुक होते हैं। इस समय वे अपने व्यवहार को विहित (approve) करने की चेष्टा करते हैं। तीसरी अवस्था, पाँचवी साल में होती है। इस समय बच्चे में आत्म-विश्वास एवं (self-reliance) एवं सद्भावना सहयोग (friendly co-operation) प्रदर्शन करता है। यहाँ एक बात और भी ज्ञातव्य है कि बालकों के विकास पर व्यक्तिगत प्रभाव भी पड़ता है। यह जरूरी नहीं है कि सभी बच्चे एक ही स्थिति से गुजर कर विकसित हों। कालान्तर में उनके वातावरण और शिक्षापर ही उनका विकास निर्भर करता है।

Q. 59.—Give a brief account of the reactions of children to social environments during their early lif .

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ५४ का उत्तर देखें।

CHAPTER 12

PLAY

(खेल)

Q. 6.—What is play ? Describe briefly the influence of play on child life.

खेल के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न सिद्धान्त हैं लेकिन उनमें से कोई भी सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है। यहाँ हम उन सिद्धान्तों पर प्रकाश न डालकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि खेल (Play) एक स्वाभाविक spontaneous) और स्वतंत्र (free) प्रक्रिया है। इसका ध्येय कुछ नहीं होता, बल्कि आनन्दमनोरंजन विश्राम ही एक मात्र लक्ष्य होता है। खेल बच्चे या अन्य जीव बाध्य होकर नहीं खेलते अपितु स्वयं खेलना प्रारंभ कर देते हैं। जिस प्रकार किसी काम के करने में किसी खास मकसद की पूर्त्ति होती है उस प्रकार इसमें नहीं होता। इसमें किसी प्रकार का बाहरी प्रतिबन्ध भी नहीं रहता इसीलिये इसको स्वतंत्र-प्रक्रिया (free activity) कहते हैं। किंतु स्वतंत्रता का यह मतलब नहीं कि इसमें किसी प्रकार क नियम अथवा अनुशासन नहीं रहता। नियम और अनुशासन दोनों ही रहते हैं किंतु वे खेलनेवाले के ही द्वारा बनाये रहते हैं। इनका परिपालन भी खेलाड़ी बाध्य होकर नहीं करता बल्कि स्वेच्छा से करता है। किसी के काम को देखकर हम उसकी रुचि और प्रवृत्ति के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं किंतु खेल को देखकर हमें खेलनेवाले के सम्बन्ध में बहुत कुछ मालूम होता है।

खेल एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे खेलनेवाले का व्यक्तित्व विकास तथा अन्य मानसिक और शारीरिक विकास होता है। सभी बच्चों के खेल एक ही तरह के नहीं होते हैं बल्कि खेल का स्वरूप बच्चों की अवस्था, लिंगभेद, मानसिक संगठन और सामाजिक वातावरण पर निर्भर करता है। खेल इसलिये कोई खेलता है कि वह खेलना चाहता है। इसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये प्रश्न नम्बर ६३ के उत्तर में खेल के विभिन्न सिद्धान्तों को पढ़िये।

खेल के विभिन्न कार्यों के लिये प्रश्न नम्बर ६२ के उत्तर को पढ़िये। इससे मालूम हो जायगा कि खेल का प्रभाव बच्चों के जीवन पर क्योंकर और क्या पड़ता है।

Q. 6.—Distinguish between play and work. Give examples to illustrate the different functions of play.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ६५ का उत्तर पढ़िये।

Q. 62.—Explain howd play helps the proper development of child.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ६० के उत्तर को पढ़िये और यह प्रदर्शित करने के लिये कोशिश कीजिये कि इससे बच्चे का समुचित विकास (proper development) क्योंकर होता है।

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ६५ का उत्तर पढ़िये।

Q. 63.—Describe briefly the theories of play.

यों तो खेल (play) के बहुत से सिद्धान्त (theories) है लेकिन यहाँ हम कुछ प्रमुख सिद्धान्तो पर ही प्रकाश डालेंगे।

(१) प्रवृद्ध शक्ति-व्यय (the surplus energy-theory)—यह सिद्धान्त हर्बर्ट स्पेन्सर द्वारा प्रतिपादित किया गया है। उसका कहना है कि जब बच्चों में जीवन शक्ति (energy) का संचय आवश्यकता से अधिक हो जाता है तो वे इस शक्ति का व्यय खेल के द्वारा करते हैं। उसके मुताबिक खेल ही एक ऐसा साधन है जिसके जरिए आवश्यकता से अधिक संचित शक्ति का व्यय हो सकता है।

लेकिन स्पेन्सर का यह सिद्धान्त सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है क्योंकि खेल के द्वारा केवल संचित शक्ति का व्यय ही नहीं होता है बल्कि इससे बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास में सहायता भी मिलती है। फिर भी यदि खेल से संचित शक्ति का व्यय मात्र ही ध्येय होता तो बच्चे जब थके (fatigued) रहते हैं उस समय क्यों खेलते ? उस समय तो उनमें अधिक शक्ति का अभाव रहता है। इसके अतिरिक्त भी इस सिद्धान्त के आधार पर हम यह व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं कि बच्चे भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे भिन्न भिन्न प्रकार के खेल क्यों खेलते हैं। इतना ही क्यो, यहाँ तक देखने में आता है कि हट्टे-कट्टे बच्चे तो खेलते ही है रुग्ण बच्चे भी खेला करते हैं।

यदि यह सिद्धान्त प्रतिपन्न होता तो बीमार बच्चे क्यों खेलते? अतएव यह सिद्धान्त सर्वांग सुन्दर नहीं कहा जा सकता।

(२) भावी जीवन की तैयारी (preparation for life theory or Biological theory)—कार्लग्रूस (Karl Groose) ने बहुत से जानवरों तथा आदमियों के बच्चों के खेलों का अध्ययन करके इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसका कहना है कि बच्चों का खेल निरर्थक नहीं होता बल्कि वे अपने खेल के द्वारा अपने भावी जीवन में किये जानेवाले कार्यों को करने के लिये तैयारी करते हैं। जब लड़कियाँ गुड़ियों के साथ खेलती हैं और उन्हें खिलाने और सुलाने का खेल खेलती हैं तो इसका यही मतलब होता है कि वे बच्चे के लालन-पालन के ढंग को सीख रही हैं। इसी तरह लड़के जब दारोगा, मास्टर साहब आदि के खेल खेलते हैं तो उनका एकमात्र ध्येय भविष्य जीवन में किए जानेवाले कार्यों की तैयारी करना है। इसी प्रकार कार्लग्रूस ने सभी प्रकार के खेलों की व्याख्या की है। यदि इस सिद्धान्त पर हम विचार करें तो मालूम होगा कि यह सिद्धान्त कई स्थलों पर अक्षरशः सत्य है लेकिन यह भी सभी प्रकार के खेलों की व्याख्या पूर्णरूपेण नहीं कर सकता। अतएव यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं है।

(३) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (psychoanalytic theory)—इस सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि खेल के द्वारा बच्चे अपने अचेतन मन (unconscious mind) के संघर्ष का प्रकाशन करते हैं और इस प्रकार खेल उनकी अतृप्त

इच्छा की संतृप्ति करती है। बच्चे जिस खेल को खेलते हैं अथवा अपने खेल में जिन-जिन सामानों (materials) को इकट्ठा करते हैं उनसे उनकी पारिवारिक प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। यदि कोई बच्चा अपने माता-पिता को अधिक चाहता है तो वह वैसा ही खेल भी खेलता है जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि यह बच्चा अपने माता-पिता को बहुत प्यार करता है। इसी प्रकार अपने परिवार से असंतुष्ट रहनेवाला बच्चा सदा ऐसे ही खेलों को खेलता है जिससे कि उनके अचेतन मन के भाव प्रकट होते हैं।

यदि इस सिद्धान्त के गुण और दोष पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं है क्योंकि बहुत से खेल बच्चों के ऐसे होते हैं जिनसे उनके मानस जीवन पर कुछ भी प्रकाश नही पड़ता। अतएव हम बच्चों के सभी खेलों को इस सिद्धान्त के आधार पर नहीं समझ सकते।

(४) निर्मुक्ति सिद्धान्त (relaxation theory)—पैट्रिक (Patrick) का कहना है कि खेल (play) के द्वारा बच्चे अपनी परिश्रान्ति (fatigue) और उलझनों (anxities) से निर्मुक्ति पाते हैं। जब बच्चे किसी प्रकार का कार्य करते हैं तो मस्तिष्क केन्द्र (brain centres) बहुत परिश्रान्त हो जाते हैं और जबतक वे खेल नहीं खेलते तबतक वे थके रहते हैं। परन्तु खेलने के बाद वे उस थकावट से छुटकारा पा जाते है। किन्तु यह सिद्धान्त भी प्रतिपन्न (correct) नहीं है क्योंकि अभीतक कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला है कि काम करने से मस्तिष्क केन्द्र

(brain centres) अन्य शारीरिक अंगों से शीघ्र परिश्रान्त हो जाते हैं।

(५) वंशानुक्रम या पुनरुक्ति सिद्धान्त (recapitulation-theory) यह सिद्धान्त स्टैनले हाल (Stanley Hall) द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसके अनुसार बच्चे अपने पूर्वजों के कामों और आदतों को ही खेल में दोहराते हैं। उसका कहना है कि खेल जातीय (recial) और वंशानुक्रमिक (hereditary) होता है। हम बच्चों के खेल को देख कर पूर्वजों के कामो और आदतों का आभास पाते हैं। परन्तु यह सिद्धान्त पूर्णतः दोषपूर्ण है।

अब तक हम खेल के विभिन्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते रहे हैं और यह भी देख चुके है कि कोई सिद्धान्त भी सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है। हाँ, कुछ अश में सभी सिद्धान्त उचित जँचते हैं। अतएव खेल के सम्बन्ध में हम यही कह सकते हैं कि यह बच्चे की एक स्वाभाविक स्वतत्र प्रक्रिया (free and spontaneous activity) है जिसका ध्येय आनन्द मनोरंजन विश्राम के (recreation) अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, बाद में उससे किसी प्रकार का मानसिक (mental) अथवा शारीरिक लाभ भले ही हो।

Q 64.—What is play ? Describe the nature and functions of play in child life.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ६० और ६५ का उत्तर पढ़िये।

Q. 65.—Distinguish between work and play. What are the functions and value of play in child life ?

कार्य (work) और खेल (play) के अन्तरों को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि खेल एक स्वतंत्र (free) क्रिया (activity) है लेकिन कार्य स्वतंत्र नहीं अपितु नियमित (controlled) होता है। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि खेल के स्वतंत्र होने का मतलब यह नहीं कि खेल में किसी नियम का पालन नहीं किया जाता। खेल में भी (कम-से-कम सामूहिक खेलों में) कुछ नियमों का परिपालन करना अनिवार्य है क्योंकि बिना नियम के खेल हो ही नहीं सकता। हाँ, ये नियम स्वनिर्मित होते हैं जो अपनी इच्छानुसार पाले जाते हैं। कार्य के लिये कुछ बाहरी नियमों का पालन करना आवश्यक होता है।

किसी कार्य को करने का कोई-न-कोई ध्येय (aim) अवश्य रहता है किंतु खेल में खेलने के अतिरिक्त कोई बाह्य ध्येय निहित नहीं रहता। जब बच्चा ईंट, पत्थर और कंकड़ों को इकट्ठा करके खेल में घर का निर्माण करता है उसका एक मात्र ध्येय खेलकर आनन्द, मनोरंजन विश्राम ही होता है। वह इसीलिये खेलता है कि वह खेलना चाहता है, लेकिन जब मज़दूर किसी मकान का निर्माण करता है तो उसका ध्येय जीविकोपार्जन होता है।

खेलों से मानसिक और शारीरिक विकास होता है लेकिन

कार्य के सम्बन्ध में हम ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि बहुत से कार्य इच्छा के प्रतिकूल किसी वाह्य ध्येय की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं जिससे शारीरिक और मानसिक क्षति भी कभी-कभी हो जाती है।

खेल स्वयं संचालित होता है लेकिन कार्य किसी वाह्य प्रेरणा से किया जाता है। जब बच्चे खेलना चाहते हैं स्वतः, खेलने लगते हैं परन्तु कार्य करने के लिये कार्य करनेवाले को प्रेरणा की जरूरत होती है।

खेल बच्चे की रुचि(interest), प्रवृत्ति (attitude)और योग्यता के द्योतक होते हैं क्योंकि वे (spontaneous) स्वाभाविक होते हैं। लेकिन कार्य बच्चों की रुचि, वृत्ति और योग्यता पर प्रकाश नहीं डालते क्योंकि कार्य को किसी मकसद को पूरा करने के लिये किया जाता है।

अवस्था (age), लिंग भेद (sex), वातावरण (environment) आदि के कारण खेलों में भेद पड़ता है किंतु कार्य के लिये ये अंग आवश्यक नहीं होते। इसी तरह से और भी कई भेद खेल और कार्य में किये जा सकते हैं।

अब खेल के कार्य (function) और महत्त्व (value) को व्यक्त करने के लिये हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि खेल का महत्त्व वाल्यजीवन के लिये बहुत ही अधिक है।

खेल खेलने से बच्चों के अंग प्रत्यंग बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं। जब बच्चे दौड़ने आदि का खेल खेलते हैं तो उन्हें प्राणवायु (oxygen) अधिक मात्रा मे मिलने के कारण रक्त

संचार (circulation of blood) सुचारुरूप से होता है। इसलिये उनके शरीर में किसी तरह की खराबी नहीं आती। कहने का अभिप्राय यह है कि खेलों से बच्चे बहुत ही हट्टे-कट्टे हो जाते हैं।

खेल का हाथ मानसिक विकास (mental development) में भी कम नहीं है। यदि हम इसके महत्त्व पर विचार करें तो मालूम होगा कि खेलों से बच्चों के ज्ञान की विवृद्धि होती हैं। खेलों के ही द्वारा खेल में इस्तेमाल की जानेवाली कितनी चीजों का वे नाम जान जाते हैं और उनके शब्द भण्डार की उन्नति होती है। इसी के बदौलत उनमें तर्क शक्ति (reasoning capacity) और रचनात्मक कल्पना (creative imagination) का भी आविर्भाव होता है। सारांश यह है कि खेल से मानसिक उन्नति विशेष रूप से होती है जिसपर पूर्णतः प्रकाश डालना यहाँ असम्भव है।

खेल से बच्चो मे सामाजिकता (sociability) आती है। बच्चे जब किसी खेल को अन्य बच्चो के साथ खेलते हैं तो अन्य बच्चो के साथ खेलने के लिये उन्हें कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। इसलिये वे यह समझ जाते हैं कि उन्हें समाज में अपने को क्योंकर अभियोजित (adjust) करना चाहिये। सारांश यह है कि खेल के ही द्वारा अपने को समाज के लाभार्थ अनुशासित होना सीखते है। नेतृत्व (leadership) की भावना का भी आविर्भाव खेल में ही होता है खेल के ही कारण बच्चे एक दूसरे के प्रति सहानुभूति दिखलाना अथवा

त्याग करना सीखते हैं। जो बच्चे खेलों में भाग लेते है वे अपने को समाज में अभियोजित करने के योग्य बना लेते हैं किंतु जो बच्चे खेल में भाग नहीं लेते वे सामाजिक नहीं बन सकते और वे फलतः अन्तर्मुखी (introvert) होने के कारण स्वार्थी बन जाते हैं। इस प्रकार खेल से बच्चों में सामाजिक विकास होता है।

खेल से बच्चों में शिक्षा सम्बन्धी पहलुओं (aspects) की भी उन्नति होती है। खेलने के ही समय बच्चों में कई तरह की शिक्षणशीलता (learning) का आविर्भाव होता है। शिक्षा में बच्चों के खेल का हाथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान युग में खेल की उपयोगिता, उपचार (medicine) में भी अत्यधिक बढ़ गई है। अब बच्चों की कितनी मानसिक व्याधियों का उपचार उनके खेलों के आधार पर ही होता है और लाभ भी होता है।

इतना ही नहीं बच्चों के खेल उनके व्यक्तित्व विकास (personality development) में सहायक होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि खेल की उपयोगिता बाल्यजीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

Q. 66.—What is imagination ? Show how it is revealed in children's drawing and story.

कल्पना (imagination) वह मानसिक शक्ति है जिसके द्वारा अपने अनुभूत अनुभवो का चित्र उनकी अनुपस्थिति में अपने मानस पटल पर खींचते हैं। जब हम किसी पदार्थ का

अनुभव करते हैं और वह पदार्थ हमारी ज्ञानेन्द्रियों से ओझल हो जाता है तो उसकी अनुपस्थिति (absence) में भी हम उसका अनुभव अपने मानस पटल पर करते हैं। इसी अनुपस्थिति पदार्थ के अनुभव का नाम कल्पना है। हम कल्पना उसी चीज की कर सकते हैं जिसका कि हमें कभी अनुभव हुआ हो। बिना अनुभव के कल्पना असम्भव है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी कल्पना का आधार सदा हमारा गत अनुभव (part experience) ही रहता है। हम उसी गत अनुभव को पुनः एक नया रूप देते हैं। कभी-कभी अनुभव पूर्णतः नवीन रूप धारण कर लेता है और कभी-कभी उसमें बहुत ही कम न्यूनाधिक होता है। यदि हम आगरे का ताजमहल कभी देखे हैं और आज उसे पुनः अपने मन-मन्दिर में एक अभिनव रूप देते हैं तो यही कल्पना हुई। वास्तविक अनुभव में कमी-बेशी के द्वारा नवीनता (novelty) लाना कल्पना की खास विशेषता है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि कल्पना (imagination) पद का प्रयोग कई अर्थों में होता है लेकिन यहाँ हम उसका प्रयोग इसी उपर्युक्त अर्थ में ही करेंगे।

अब इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कि कल्पना का प्रकाशन बच्चों के खेल (play) और चित्रकारी (drawing) में कैसे होता है, हमलोगों को यह जानना आवश्यक है कि पहले बच्चों के खेल अथवा चित्रकारी पर लोगों का विशेष ध्यान नहीं था क्योंकि वे लोग इसे महत्व का नहीं समझते थे। लेकिन आज से कुछ दिन पूर्व पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का ध्यान बच्चों के

इन व्यवहारों की तरफ आकृष्ट हुआ और उन लोगों ने इनका अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। इनमें अनाफ्रायड (Anna-freud) और क्लायन (Klein) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मनोविश्लेषण के पण्डितों का कहना है कि बच्चे अपने मानसिक संघर्ष (mental conflict) और विकृत स्थायी भावों का प्रकाशन कहानियों (stories) और चित्रकारियों (drawings) द्वारा करते हैं। इसी मूल सिद्धान्त के आधार पर आज बच्चों की मानसिक व्याधियों (mental disease) का उपचार बच्चों के खेल का निरीक्षण करके किया जाता है। बच्चों को एक कमरे में ले जाकर तरह-तरह के खेलने का सामान रख दिया जाता है और बच्चों के खिलौनों के चुनने, उनके साथ खेलने आदि का निरीक्षण बहुत सावधानी के साथ किया जाता है। जिस बच्चे को अपने पिता या माता से किसी प्रकार का विरोध रहता है वह अपने उस विरोध का प्रकाशन किसी खिलौने को छिन्न-भिन्न करके करता है। जब वह खिलौने को तोड़ देता है तो उस समय वह बहुत खुश होता है और कहता है कि हमने बाबूजी को या मा को मार डाला। इसी प्रकार यदि किसी बच्चे को किसी व्यक्ति विशेष के प्रति खास सहानुभूति (sympathy) और श्रद्धा (respect) रहती है तो उसका भी प्रकाशन वह अपने खेल ही द्वारा करता है। वह उसी खेल में किसी खिलौने के प्रति बहुत आवभगत दिखलाता है, ऊँचा आसन देता है और तरह-तरह का आदर भाव दिखलाकर अपने अचेतन मन के भावों को व्यक्त करता है।

इसी प्रकार बच्चे चित्रकारी (drawing) द्वारा भी अपनी कल्पनाओं और अचेतन मन (unconscious mind) को ही व्यक्त करते हैं। यदि उन्हें कागज पेंसिल अथवा चित्रकारी के अन्य सामान दे दिये जाते हैं तो वे तरह-तरह के चित्र बनाने में संलग्न हो जाते हैं। जब उनसे चित्रों की व्याख्या पूछी जाती है तो वे अपने मनोनुकूल उनकी व्याख्या भी करते हैं। जिस बच्चे को किसी व्यक्ति के प्रति घृणा अथवा द्वेष भाव रहता है तो वह उसका प्रकाशन चित्र के ही द्वारा करता है। यह केवल बच्चों के सम्बन्ध में ही ठीक नहीं है बल्कि प्रौढ़ व्यक्ति भी अपनी कल्पनाओं का प्रकाशन चित्र द्वारा ही करते हैं। जिस व्यक्ति की जैसी कल्पना होती है उसीके अनुरूप वह चित्रकारी भी करता है। आज विश्व की प्राचीन सभ्यता पर और वहाँ के रहनेवालों पर चित्रकारियों के ही आधार पर बहुत-सा प्रकाश डाला गया है। भारतीय देवी-देवताओं के चित्र प्राचीन भारतीयों की कल्पनाओं के ही द्योतक हैं।

इतना ही क्यों, बच्चों की कल्पनाओं का प्रकाशन उनकी कहानियों द्वारा भी होता है क्योंकि वे अपनी कहानियों द्वारा दबे भावों को ही व्यक्त करते हैं। जब बच्चे अपनी बूढ़ी दादी या नानी को अपनी तरह-तरह की कहानियाँ बनाकर सुनाते हैं तो उन कहानियों में वे वही अभिव्यक्त करते हैं जो कि उनकी कल्पना और अचेतन मन को ठीक जँचता है। जैसा कि हम लोग जानते हैं। सभी व्यक्ति अपने लेखों और कहानियों द्वारा अपना ही अचेतन मन व्यक्त करते हैं। उसी तरह बच्चे भी अपनी

कहानियों में अपनी कल्पनाओं का ही प्रकाशन करते हैं। आज के इस युग में बच्चों को सुचारुरूप से पालन पोषण करने के लिये उनके प्रारंभ से ही उनके खेलों, चित्रकारियों आदि का निरीक्षण करके उनकी वास्तविक योग्यता का पता लगा लेते हैं। थोड़े शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जिस बच्चे में जिस प्रकार की कल्पना होती है उसीके अनुरूप वह अपनी कहानियों और चित्रकारियों आदि का भी निर्माण करता है। इसकी सत्यता को नित्य प्रतिके अनुभवों से प्रमाणित किया जा सकता है।

Q. 67.—Describe. the characteristics of children's imagery and show how imagery canges with age.

बच्चों की प्रतिमाओं की विशेषताओं का वर्णन करने के लिये यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि बच्चों में प्रायः दृष्टि प्रतिमा (visual imagery) का ही बाहुल्य रहता है। कारण कि बच्चे किसी चीज को देखने पर उसके सम्बन्ध में जितना विचार कर सकते हैं या प्रभावित हो सकते हैं उतना और किसी साधन से नहीं। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उनमें अन्य प्रकार की प्रतिमाओं (imageries) का अभाव रहता है। सची बात तो यह है कि बच्चे की किसी इन्द्रिय में कोई खराबी न हो तो वह किसी प्रकार की प्रतिमा अपने मानस पटल पर खींच सकता है लेकिन उनमें दृष्टि प्रतिमा की ही अधिक योग्यता विद्यमान रहती है। यही कारण है कि उनमें दृष्टि प्रतिमाओं का ही आधिक्य रहता है।

बच्चों की प्रतिमा (imagery) की दूसरी विशेषता (characteristic) यह है कि उनकी शक्ति प्रायः पदार्थ प्रतिमा (object image) की ही होती है, शब्द प्रतिमा (word image) की नहीं। इसीलिये कहा जाता है कि उनकी प्रतिमाएँ विशेषतः समूर्त (concrete) होती हैं। जब किसी बच्चे से आम या अमरूद शब्द कहा जाता है तो उसके मानस पटल पर शब्द प्रतिमा नहीं आविर्भूत होती बल्कि पदार्थ प्रतिमा (object image) का ही आविर्भाव होता है। वह अपने मानस मन्दिर में आम अथवा अमरूद का समूर्त चित्र लाता है। इसी तरह कुत्ता कहने पर बच्चे के मन मन्दिर में एक कुत्ते का चित्र तैयार हो जाता है, उसके शब्द का नहीं। इसी तरह अन्य प्रतिमाओं के भी सम्बन्ध में घटित होता है। इसीलिये कहा जाता है कि बच्चों की प्रतिमाएँ प्रायः समूर्त होती हैं।

बच्चों की प्रतिमाएँ (imageries) बहुत ही स्पष्ट (vivid) और प्रबल (intense) होती हैं। जैसा की हमलोग जानते हैं बच्चो का प्रत्यक्ष ज्ञान अत्यन्त सीमित होता है। उन्हें विश्व के सभी प्रकार के ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा उपलब्ध नहीं रहते। इसलिये जब कोई प्रतिमा उनके मानस पटल पर आविर्भूत होती है तो वह अत्यन्त स्पष्ट (vivid) और प्रबल होती है। यद्यपि प्रत्येक प्रकार की प्रतिमा का आविर्भाव बच्चे में नहीं होता लेकिन जब उसमें किसी प्रकार की प्रतिमा आविर्भूत होने लगती है तो वह अत्यन्त प्रबल तथा स्पष्ट होती है। प्रयोग करने पर ज्ञात होता

है कि प्रतिमाओं की जितनी प्रबलता (intensity) और स्पष्टता (vividness) बच्चों में रहती है उतनी सयानों में नहीं होती।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है बच्चों की प्रतिमाओं (imageries) का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। इसका कारण पहले ही व्यक्त किया जा चुका है इसलिये इसके सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि ऐसा उनके प्रत्यक्ष ज्ञान के संकीर्ण क्षेत्र के ही कारण होता है।

इसी प्रकार दो एक और भी विशेषताएँ बच्चों की प्रतिमाओं की होती हैं परन्तु यहाँ हम उनका वर्णन करना आवश्यक नहीं समझते क्योंकि उनकी कोई विशेष प्रधानता नहीं है।

अब अवस्था के साथ-साथ प्रतिमाओं के परिवर्त्तन को प्रदर्शित करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सर्व-प्रथम बच्चों में पुनरावृत्त्यात्मक प्रतिमाओं का आविर्भाव होता है। किंडर गार्टेन तथा pre-school के बच्चों का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि इस अवस्था के बच्चों के खेल प्रायः अनुकरणात्मक (imitative) और पुनरावृत्त्यात्मक (reproductive) ही होते हैं। एण्ड्रयुज (Andrews) ने लगभग एक सौ बच्चों पर प्रयोग (experiment) करके यह व्यक्त किया है कि जैसे-जैसे बच्चों की अवस्था बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उनकी पुनरावृत्त्यात्मक कल्पनाओं की संख्या में भी विवृद्धि होती जाती है। इतना ही नहीं, बल्कि यह भी देखने मे आता है कि ३ से ४ वर्ष के बच्चों में रचनात्मक (creative)

कल्पनाओं का बाहुल्य रहता है जिसमें परियों की कहानियाँ अथवा भूतप्रेत की कहानियों की भरमार रहती है और बच्चों का मन भी इसी में लगता है। वे इन सबों के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी कहानियाँ या बातें कहेंगे जिसे सयाना कभी विश्वसनीय नहीं समझता। इस अवस्था के बच्चे प्रायः इसी प्रकार के कल्पना जगत में विहार करते रहते हैं। दस से तेरह वर्ष की अवस्था वाले बच्चों में पुनः इस प्रकार की कल्पना का अभाव हो जाता है और उनकी कल्पनाएँ प्रायः व्यावहारिक होती हैं। वे ऐसी ही कल्पनाएँ करते हैं जिनकी संभावना विश्व में भी रहती है। उनके खेल भी इसी प्रकार की कल्पना के द्योतक होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इस अवस्था में बच्चों की कल्पनाएँ आत्मगत (subjective) न होकर विधेयात्मक (objective) होती है। ऐसी कल्पनाएँ अधिकतर किसी ध्येय की परिपूर्ति करती हैं। स्ट्रूव (Struve) के विभिन्न प्रयोगों ने बच्चों की विभिन्न अवस्था सम्बन्धी कल्पनाओं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है।

किशोरावस्था में (in adolsence period) बच्चे का मन प्रायः संवेगमय (emotional) बन जाता है। इस अवस्था में सभी प्रकार की कल्पनाओं का सामंजस्य रहता है। वे इस समय तरह-तरह की उमंगें और भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं। परी और भूतप्रेत सम्बन्धी कल्पनाओं का आविर्भाव तो नहीं होता लेकिन इस समय की कल्पनाएँ भी आत्मगत ही होती हैं। यों तो ऐसी कल्पनाएँ प्रायः इस

अवस्था के सभी बच्चों में पाई जाती है लेकिन जो बच्चे अन्तर्मुखी रहते हैं और अकेले रहते हैं वे प्रायः दिवास्वप्न (day dreaming) में विचरा करते हैं। ऐसा स्वान्तः सुखाय ही होता है, इसलिये यह प्रारंभिक अवस्था की कल्पना से ही मिलती-जुलती अवस्था रहती है। परन्तु ज्योंही बच्चा इस अवस्था को पार करता है त्यों ही पुनः इस प्रकार की कल्पनाएँ विलीन हो जाती हैं और अब वे प्रायः व्यावहारिक (practical) रूप धारण कर लेती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति किसी ध्येय विशेष की प्राप्ति के लिये ही किसी प्रकार की कल्पना करता है। प्रायः इन्हीं उपर्युक्त क्रमों से अवस्था के साथ-साथ बच्चों की कल्पनाओं में परिवर्तन होता है।

Q. 68—What role does imagination play in the child's life ? Illustrate your answer with the help of childeren's drawing.

बच्चे के जीवन में कल्पना के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिये यह व्यक्त करना जरूरी है कि सबसे अधिक महत्त्व जो बच्चे के जीवन में कल्पना का है वह यह है कि कल्पना के बदौलत बच्चा बहुत ही आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है जिस चीज का अनुभव वह अपने भूतकाल में किये रहता है उसका अनुभव वह उसकी अनुपस्थिति में भी करके उतना ही आनन्दित होता है जितना कि उसकी अनुपस्थिति में। जब वह किसी मनोहारी पदार्थ को देखता है और उससे आनन्द के कारण पुनः उसे प्राप्त करना चाहता है। परन्तु अपनी अस-

मर्थता के कारण जब वह उसे नहीं पाता है तब वह उसका आनन्द अपने कल्पना संसार में ही लेता है। कभी-कभी ता ऐसा होता है कि बच्चा यह बिल्कुल ही भूल जाता है कि वह कल्पना का अनुभव कर रहा है। इस अज्ञान के समय उसे वास्तविकता का ही आनन्द मिलता है। इतना ही क्यों, वह अपने भविष्य की भी कल्पना अपने वर्तमान में ही करता है और इस तरह वह सदा आनन्दमय बना रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि कल्पना संसार से बच्चा आनन्द मनोरंजन विश्राम (recreation) प्राप्त करता है जो उसके जीवन के लिये निहायत मुफीद सिद्ध होता है। यहाँ इस बात का भी उल्लेख कर देना अप्रासंगिक (out of place) न होगा कि बच्चों की कल्पनाएं पूर्णतः समूर्त (concrete) होती हैं।

इसके अतिरिक्त कल्पना के सहारे बच्चे अपने विचारों को सुन्दर एवं मनोहर ढंग से प्रकाशित करने मे समर्थ होते है। जो बच्चे कल्पना मे विशेष निपुण रहते है वे अपनी बातों को सरस और रुचिर बना देते हैं जिससे उनकी बातों को सुनने में बहुत ही आनन्द आता है। वस्तुतः कल्पनाविहीन बालक अथवा प्रौढ़ व्यक्ति अपनी बातों में माधुर्य लाने में असमर्थ होता है।

फिर भी बच्चे कल्पना के ही बदौलत अपने को वातावरण (environment) मे अभियोजित (adjust) करने मे समर्थ होते हैं। जिन बच्चों में कल्पना शक्ति का पूर्णतः विकास रहता

है वे बच्चे किसी के भाव (feeling), इच्छा (desire) आदि को अच्छी तरह समझ जाते हैं और तब उसीके अनुसार अपना व्यवहार भी प्रदर्शित करते हैं। जिसमें जितनी कल्पना शक्ति का आधिक्य रहता है वह उतनी दूसरों से सहानुभूति रखता है। सहानुभूति रखने के कारण उसके सभी व्यवहार आनन्ददायक ही होते हैं। बच्चों की कल्पना का महत्त्व उनके सामाजिक जीवन के लिये बहुत ही अधिक है।

इतना ही क्यों, कल्पना के ही प्रसाद से बच्चों का मानसिक विकास भी होता है। जिस बच्चे में कल्पना शक्ति प्रचुर अंश मे रहती है वह सभी परिस्थितियों को अच्छी तरह समझ जाता है। प्रयोग करके देखा गया है कि मानसिक विकास में कल्पना (imagination) का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पहले बच्चों में समूर्त पदार्थों की कल्पनाओं की ही योग्यता विद्यमान रहती है। किंतु क्रमशः इस योग्यता (ability) का परिवर्द्धन होने लगता है। जिस बच्चे की कल्पना जितनी ही पूर्ण होती है उसका मानसिक विकास (mental development) भी उसी अनुपात में हुआ रहता है। कल्पना का हाथ बच्चो के मानसिक विकास में बहुत ही अधिक रहता है।

यदि हम कल्पना के महत्त्व को बच्चे के भावी जीवन (future life) में खोजें तो हमें मालूम होगा कि इसी प्रारंभिक कल्पना शक्ति के आधार पर बच्चे आगे चल कर एक नए विश्व का निर्माण करने में समर्थ होते हैं। नए नए यानों का आविष्कार इसी कल्पना का प्रसाद है आज गगन विहारी वायुयानों को

देख कर कौन नहीं चकित होता है ? यह आश्चर्य कल्पना के ही प्रसाद का फल (result) है। नये-नये सिद्धान्तों और दर्शनों का आविर्भाव इसी कल्पना में होता है। कहने का तात्पर्य यह है। कि संसार में क्रान्ति (revolution) ला देना कल्पना शक्ति से ही हो सकता है। जिसमें कल्पना शक्ति का अभाव है वह अपने जीवन में कुछ भी नहीं कर सकता। रचनात्मक कार्य (constructive work) के लिये कल्पना का होना बहुत ही आवश्यक है।

आज कल तो बच्चों की कल्पनाओं का महत्त्व और भी बढ़ गया है क्योंकि अब उनकी कल्पनाओं के स्वरूप (nature) को जानकर उनके व्यक्तित्व (personality), रुचि (interest) आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है और यदि उनमें किसी प्रकार की मानसिक व्याधि (disease) का आभास मिलता है तो उसे दूर किया जाता है। इसी तरह हम कह सकते है कि कल्पना का महत्त्व बच्चो के जीवन मे बहुत ही अधिक होता है लेकिन निरंतर कल्पना संसार में ही विचरन करना उनकी असाधारणता का द्योतक होता है। इसीलिये यहाँ यह कह देना अनिवार्य है कि नियन्त्रित कल्पनाएँ बाल्य जीवन के लिये लाभप्रद होती हैं लेकिन अनियंत्रित कल्पनाएँ उनके जीवन का घातक सिद्ध होती हैं।

Q. 69.—Describe the role of imagination in child's drawing and story telling.

इस प्रश्न के लिये प्रश्न न० ६६ का उत्तर पढ़िये।

Q. 70.—Write a note on imagination of the young child as indicated in his play.

बच्चों के खेल निरर्थक नहीं होते बल्कि वे उनके लिये बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होते है। जैसा कि हम लोग जानते हैं खेल से बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकाश होता है इस विकाश के साथ-साथ उनके मानस जीवन के स्वरूप का भी प्रकाशन होता है। पहले तो नहीं, लेकिन आजकल बाल्य-जीवन में खेल का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। आजकल के मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि खेल के द्वारा ही बच्चों के अचेतन मन (unconscious mind) में पड़े हुये विचारों और इच्छाओं को जाना जा सकता है। खेल से ही बच्चे की मानसिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है।

आधुनिक युग में बच्चो की दमन की हुइ इच्छाओं (repressed desires) और विकृत स्थायीभावो (complexes) का परिज्ञान उनके खेलो का निरीक्षण करके ही किया जाता है। बच्चो की कल्पना शक्ति (imaginative capacity) का भी पता उनके खेलो से ही लग सकता है क्योंकि जिस बच्चे में जिस प्रकार की कल्पना (imagination) की शक्ति विद्यमान रहती है वह वैसा ही खेल भी खेलता है।

बच्चो में पहले-पहल कल्पना शक्ति अधिक मात्रा में नहीं रहती क्योंकि उनका ज्ञान (knowledge) अत्यन्त सीमित रहता है। इसलिये उनके खेल भी साधारण कोटि (simple type) के ही होते हैं। कुछ दिनों में जब उनमें स्मृति

(remembering) की योग्यता (capacity) बढ़ जाती है तो उनके खेल गत अनुभवों के आधार पर होते है। बच्चे जैसा दूसरों को करते और खेलते देखते हैं वे उसी प्रकार की कल्पना भी करते हैं जिसका प्रकाशन उनके खेलों द्वारा होता है।

बच्चों के खेल मे उनकी कल्पनाएँ क्योंकर लक्षित होती हैं, इसका वर्णन करने के लिए यह व्यक्त कर देना आवश्यक है कि सर्वप्रथम बच्चों में पुनरावृत्त्यात्मक कल्पनाओं (reproductive imagination) का आविर्भाव होता है। किंडर गार्टेन तथा pre-school के बच्चों का निरीक्षण करने पर पता चलता है कि इस अवस्था के बच्चों के खेल प्रायः अनुकरणात्मक (imitative) तथा पुनरावृत्त्यात्मक ही होते हैं। एण्ड्रयुज के प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि बच्चों की ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है त्यों-त्यों इस प्रकार की कल्पना मे भी विवृद्धि होती जाती है। तीन से चार की अवस्था वाले बच्चों मे रचनात्मक (creative) कल्पनाओं का आविर्भाव रहता है अतएव उनके खेल रचनात्मक (creative) ही होते हैं। वे अपने खेलों में नया-नया आविष्कार करते हैं और इस प्रकार अपनी रचनात्मक कल्पना को अपने खेलो द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। दस से तेरह वाले अवस्था के बच्चों में इस प्रकार की कल्पना का अभाव हो जाता है और उनमे व्यावहारिक (practical) कल्पनाओं का बाहुल्य हो जाता है। वे ऐसी ही कल्पनाएँ करते हैं जिनकी संभावना विश्व मे रहती है। इसलिये उनके खेल भी व्यावहारिक ही होते हैं इस अवस्था के बच्चे विभिन्न व्यवसायियों तथा पेशेवालों के पार्ट अपने खेल में अदा करते

हैं। वे कोई भी ऐसा खेल नहीं खेलते जो हास्यास्पद या विचित्र मालूम पड़े। इस समय के खेलों में वे कभी भी भूत-प्रेत के पार्ट को अदा नहीं करते और न इसे दूसरे प्रकार से ही प्रकाशित करते हैं। कहने का आशय यह है कि इस अवस्था की कल्पनाएँ आत्मगत (subjective) न होकर विधेयात्मक (objective) होती हैं, अतएव उनके सभी खेल इसी विधेयात्मक स्वरूप को ही व्यक्त करते है।

किशोरावस्था के भी खेल इसी प्रकार उनकी मानस कल्पना पर ही प्रकाश डालतें हैं। यदि ऐसें उदाहरणों को खोजा जाय तो इसकी कमी नहीं। हमारे बच्चों के जितने भी खेल हैं उनकें काल्पनिक जगत के ही द्योतक होतें हैं। यहाँ स्थानाभाव के कारण उनकी कल्पना और खेल पर पूर्णतः प्रकाश डालना असंभव है। लेकिन इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि उनकें छोटे छोटे खिलौने, लड़तें हुए सैनिक, रेल-गाड़ियों के डिब्बे या जहाज का काम करते हैं। उन्हें टूटे-फूटे सामान दे देने पर वे उन्हीं छिन्न-भिन्न साधनों से एक नई दुनियाँ का निर्माण कर लेतें हैं और अपने आपको संतुष्ट पातें हैं। इस प्रकार के सभी खेल बच्चों की रचनात्मक कल्पना पर ही प्रकाश डालतें हैं।

वे अपने खेलों में अपने को अपनी वास्तविकता से भिन्न समझते और इस प्रकार राजा, रानी, संरक्षक, डाक्टर आदि बन कर अपने पड़ोसियों की सेवा सुश्रूषा करते है। वे अकेले खेलतें हुए भी कभी अकेले नहीं रहते हैं क्योंकि उस समय उनके

चारों ओर उनके काल्पनिक सम्बन्धी विद्यमान रहते हैं जिनसे वे बातें करते हैं।

इसी प्रकार जिस बच्चे की कल्पना विध्वंसात्मक (destructive) होती है वह अपने खेलो को भी विध्वंसात्मक ही रूप देता है। जब कभी-कभी हमलोग उसके पास से होकर गुजरते हैं तो पाते हैं कि वह किसी खिलौने को तोड़-फोड़ रहा है और कुछ कहते भी रहता है। यदि उससे पूछा जाय कि क्या करते हो तो वह तुरत कह बैठता है कि यह चोर है या दुश्मन है इसलिये, मै इसे पीट रहा हूँ। यदि कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे या व्यक्ति से द्वेष रखता है तो वह अपने खेल में ही उससे बदला लेता है और ऐसे ही खेलों को खेलता है जिससे उसके विचार स्पष्ट हो जाते हैं।

जो बच्चा निराशावादी रहता है उसके खेल भी उसकी निराशावादिता को ही व्यक्त करते हैं और जो बच्चा आशावादी और सामाजिक रहता है उसके खेल सदा उसकी कल्पनाओं के ही अनुरूप सामाजिक होते हैं।

खेलों में अन्तर भी देखने को मिलता है, जो बच्चों की कल्पना के अन्तरो को व्यक्त करता है। जैसे-जैसे बच्चों की कल्पनाओं में परिवर्त्तन होता जाता है वैसे वैसे उनके खेलो के स्वरूप और खेलों के सामानो मे भी अन्तर होता जाता है।

लड़कियाँ प्रायः अपने को गृहिणी बनने को तथा माता बनकर बच्चों के दुलार की कल्पना किया करती हैं, इसलिये वे लड़ने-भिड़ने वाले खेलों को नहीं खेलतीं। उनके खेलो में

गुड़ियों का विशेष महत्व रहता है और उन्हें वे छोटा बच्चा, पतोहू आदि बनाकर उनके साथ खेलती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों के खेल उनकी कल्पनाओं को ही व्यक्त करते हैं—अतएव बच्चों की कल्पना शक्ति का पता लगाने के लिये उनके खेलों और खेल के साधनों का निरीक्षण करना अनिवार्य है।

Q. 71.—In what respect do children's drawings differ from drawing of adults ? Try to explain these differences.

बच्चे और प्रौढ़ (adults) की चित्रकारी (drawing) में अन्तर को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना जरूरी है कि छोटे बच्चे वस्तुतः किसी प्रकार की चित्रकारी करने में असमर्थ होते है। कहने का अभिप्राय यह है कि बच्चों में एक अवस्था ऐसी होती है जिसमें वे इच्छापूर्वक जानकर किसी पदार्थ का प्रतिरूपक (representation) चित्र बनाने मे पूर्णरूपेण असमर्थ होते हैं जब प्रारम्भ मे बच्चे के हाथ में कागज पेंसिल दे दिया जाता है तो वह विना किसी लक्ष्य (aim) के पेंसिल से कागज पर इधर-उधर घुमा कर कुछ जल्दी जल्दी खींच देता है, जो प्रौढ़ व्यक्तियो का अनुकरण मात्र कहा जाता है। यद्यपि बच्चा उस खीचने में किसी तरह का कुछ ध्येय नहीं रखता किंतु कभी-कभी ऐसा होता है कि सयोगवश (accidently) वह किसी पदार्थ के चित्र सा ही हो जाता है। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि बच्चे के मन मे किसी पदार्थ का

चित्र बनाने की अभिलाषा थी। जो कुछ भी बन जाता है वह सहसा ही।

तीन चार वर्ष की अवस्था के आरम्भ में बच्चों के मन में किसी चीज का चित्र बनाने की इच्छा होती है। इसे हम चित्र निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था कह सकते हैं। यदि हम इस अवस्था की चित्रकारी पर विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि इस समय उनकी चित्रकारी में आदमियों के चित्र होते हैं। यदि वे आदमी के चित्र सदृश न भी होते हैं तोभी वे उन्हीं के प्रतिरूपक होते हैं जिन्हें कि बच्चा बनाना चाहता है। मनुष्य का चित्र बनाने की प्रवृत्ति नब्बे प्रतिशत इस अवस्था के बच्चों में पाई जाती है। इस अवस्था की चित्रकारी की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि बच्चे चलती-फिरती चीजों का ही चित्र बनाते हैं, स्थिर (static) चीजों का नहीं। यदि वे संयोगवश किसी मकान का भी चित्र बनाते हैं तो उसमें उठते हुए धुआँ का अवश्य ही चित्र बनाते हैं। मनुष्य का भी चित्र बनाते वक्त वे चलते-फिरते या हाथ घुमाते हुए मनुष्य का ही चित्र बनाते हैं या उसे सिगरेट या हुक्का (smoking pipe) पीते हुए दिखलाते हैं। लेकिन सयानों के चित्र में ऐसा नहीं होता। उनके लिये जरूरी नहीं है कि वे मनुष्य का ही चित्र बनावें और उन्हें गतिशील प्रदर्शित करें अथवा सिगरेट या हुक्का पीते हुए दिखलावें। यदि वे मकान का भी चित्र बनाते हैं तो उनमें उठते हुए धुआँ का दिखलाना उनके स्वभाव के लिए अनिवार्य नहीं है। कहने का मतलब यह है कि प्रौढ़ व्यक्ति किसी का भी चित्र और किसी अवस्था का

भी चित्र बना सकते हैं। उनकी चित्रकारी का कोई एक सिद्धान्त या नियम (principles or rules) निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

बच्चों के प्रारंभिक चित्र बहुत ही भद्दे तथा अपूर्ण (imperfect) होते हैं और ऐसा मालूम होता है कि बच्चे ऐसे ही चित्रों को बना कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। इन चित्रों को हम मुश्किल से किसी पदार्थ का प्रतिरूपक (representation) कह सकते हैं। बच्चों के चित्र किसी पदार्थ के समान तो नहीं होते लेकिन उन्हें हम किसी पदार्थ का प्रतीक (symbol) कह सकते हैं, जो वस्तुतः प्रतीक मात्र ही होते हैं जिनसे किसी चित्र का बोध किया जा सकता है। एक भद्दा वृत्त (rude circle) जिसके निचले भाग में दो रेखाएँ हों एक मनुष्य के चित्र को अभिव्यक्त कर सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि अवस्था के साथ-साथ बच्चों के चित्रों में भी बारीकियाँ आने लगती हैं। यदि हम सयानों के चित्र पर ध्यान दें तो हमें मालूम होगा कि उनके चित्र अपूर्ण तथा भद्दे नहीं होते। उनमें सार्थकता रहती है और उन्हें देख कर ही कहा जा सकता है कि ये किस चीज के चित्र हैं क्योंकि वे किसी पदार्थ के प्रतिरूपक तो रहते ही हैं, साथ-साथ उनमें सादृश्य भी रहता है।

बच्चा जो देखता है और जिसके बारे में जानता है, इन दोनों को अलग-अलग करने मे असमर्थ होता है। इस लिये जब वह किसी पदार्थ का चित्र खींचता है तो उसमें उसका पूरा वर्णन (description) करता है, चित्र मात्र ही नहीं बनाता।

जब वह किसी आदमी का चित्र बनाता है और उसे घोड़े पर बैठाता है तो वह उसके दोनों पैरों को और कानों को चित्र में दिखलाता है। जब मकान का चित्र खींचता है तो वह अपने चित्र में उसकी तीन दिशाओं को व्यक्त करता है। उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि देखने वाला इसे किस प्रकार का देखेगा इसलिए इसे कैसा बनाना चाहिए। यही कारण है कि वह किसी पूरे चित्र को बना कर पूरा पदार्थ प्रदर्शित करता है। लेकिन सयानों के चित्र में ऐसी बात नहीं होती। वह जो पदार्थ सामने देखता है और जो उनके बारे में जानता है, इन दोनों के अन्तरों को भी जानता है। इसलिए जब वह कोई चित्र बनाता है तो उसी प्रकार का बनाता है जैसे कि एक तरफ से देखने से मालूम होता है। वह उसका पूर्ण विवरण नहीं देता।

बच्चा जब किसी पदार्थ के चित्र को बनाता है तो उनमें वह उन्हीं चीज़ों को दिखलाता है जिनका कि वह अपने व्यावहारिक जीवन में काम लेता है। जिनका प्रयोग वह नहीं करता उन्हें अपने चित्र में नहीं दिखलाता। लेकिन सयाने के चित्र में ऐसा नहीं होता। वह तो किसी पदार्थ के सभी गुणों को चित्रित करता है चाहे उन्हें वह काम मे लाता हो या नहीं।

बच्चा अपने अनुभूत तथा समूर्त (concrete) पदार्थों का ही चित्र बनाता है उनके परे का नही। लेकिन सयाना उन पदार्थ या गुणों का भी चित्र बनाता है जिनका उसे साक्षात्कार नहीं है बल्कि उसकी कल्पना मे ही है जैसे, इन्द्रपुरी, यमराजपुरी

आदि। अर्थात् जहाँ बच्चा समूर्त पदार्थों का ही चित्र बना सकता है वहाँ सयाना अमूर्त का भी चित्र बनाने में असमर्थ होता है।

इसी प्रकार बच्चे का चित्र कलामय नहीं होता परन्तु सयाने का चित्र परिपूर्ण होने के कारण कलामय होता है।

इस तरह बच्चे और सयाने के चित्रों में बहुत प्रकार के अन्तर हैं लेकिन यहाँ हम सब पर प्रकाश नहीं डालेंगे।

अब प्रश्न यह होता है कि यह अन्तर दोनों की चित्रकारियों में क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सयाने का मानसिक विकाश पूर्णतः हुआ रहता है और उसका ज्ञान भी पूर्णरूपेण विकसित रहता है। उसमें कल्पना और चिंतन की शक्ति बहुत ही अधिक रहती है। लेकिन बच्चे का मानसिक विकाश नहीं रहता है। उसे संसार के विषय में कुछ नहीं मालूम रहता है। उसका ज्ञान भी अपने ही चारों ओर सीमित रहता है, कल्पना और चिंतन की क्या बात। इन अन्तरों के कारण बच्चों और सयानों की चित्रकारियों में भी अन्तर होता है। जहाँ सयाना अपने मानसिक विकास के कारण हर तरह की चित्रकारी करता है वहीं बच्चा मानसिक विकास न होने के कारण उनकी चित्रकारी नहीं कर सकता। वह तो एकमात्र अपने अनुभूत पदार्थों का ही चित्र निर्माण करता है, यह भी भद्दे और अपूर्ण तरीके से। उसमें वह कल्पना और चितन शक्ति नहीं रहती जिसके द्वारा सयाना अमूर्त (abstract) को भी समूर्त में परिणत कर देता है। बच्चे में वह मन और परिपक्वता (maturation)

शरीर सम्बन्धी जो सयानों में पाई जाती है नहीं रहती है। इन्हीं सब कारणों से इन दोनों की चित्रकारी में अन्तर होता है।

Q. 72.—Show how children's imagination is first characterized by the fairy tale element.

बच्चों की कल्पना में परियों की कहानियों का बीजतत्त्व (fairy tale element) क्योंकर रहता है इसे व्यक्त करने के लिये यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चों की कल्पना का प्रकाशन उनके खेल तथा कहानियों द्वारा होता है जिनमें कि वे अपनी अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं।

बालकों का मन प्रारम्भ में बहुत ही कोमल होता है तथा उनकी शक्ति भी सीमित होती है। हमें यह नहीं समझना चाहिये कि जिस प्रकार प्रौढ़ लोगों का मन विकसित और शक्ति सम्पन्न होता है उसी प्रकार बालकों का भी। हम जिस समय जैसी कल्पना करना चाहते हैं वैसी कल्पना कर लेते हैं परन्तु बालकों के सम्बन्ध में ऐसा सोचना ठीक नहीं है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है उनका मन पूर्ण विकासित न होने के कारण हमलोगों के मन-सा शक्तिशाली भी नहीं होता, इसलिये बालकों की कल्पना शक्तिभी सीमित ही होती है। उनकी कल्पना का एकमात्र आधार प्रत्यक्ष ही होता है। वे उन्ही पदार्थों की कल्पना करते हैं जिनको वे अपनी आँखों से देखते या कानों से सुनते हैं। इस प्रकार की कल्पना को ग्रहणात्मक (receptive imagination) कल्पना कहते हैं। इस कल्पना के जरिए बालकों दूसरे को लोंगों के विचारों के सहारे काल्पनिक पदार्थ की

सृष्टि करता है। जब हम बालक से कोई किस्सा कहानी कहते हैं तो वह हमारे कहे हुए शब्दों के आधार पर उस स्थिति को अपने मानस पटल पर चित्रित करता है, जो कि हमारी कहानी में वर्णित है।

जब हम यह जान गये कि बच्चों में आरम्भ में ग्रहणात्मक कल्पना की ही शक्ति रहती है जो हमारे कथानकों से लिये जाते हैं तो अब हमें यह देखना है कि उन्हें किस प्रकार के कहानी किस्से रुचिकर मालूम होते हैं। यदि हम इस पर विचार करें तो हमें मालूम होगा की बच्चों का मन सयानों से बिल्कुल भिन्न होता है, इसलिए जो कहानियाँ हमें अच्छी लगती है वही उन्हें भी अच्छी नहीं लगतीं। यदि किसी सयाने को बच्चों की कहानियाँ अच्छी लगे तो इसका मतलब होता है कि उसका मानसिक विकास पूर्णरूपेण नहीं हुआ है। हाँ, तो हमलोगों को जिस प्रकार असम्भव घटना वाली यही कहानियाँ रुचिकर नहीं लगती या उनमें विश्वास नहीं होता उसी प्रकार बच्चों को भी वैज्ञानिक या वास्तविक कहानियाँ अच्छी नहीं लगतीं और न रुचिकर ही प्रतीत होती हैं। उन्हें संसार में कोई चीज या घटना असम्भव नहीं मालूम होती। यदि उनसे बीस भुजा वाले आदमी दस मस्तक और सौ हाथ लम्बे वाले आदमी की कहानी सुनाई जाय तो इस प्रकार की कहानी उन्हें बहुत ही प्रिय और विश्वसनीय मालूम होती है। कोई पशु से कहानी में आदमी कैसे बन गया या कोई आकाश की परी आकर किसी बच्चे को कैसे दूध पिलाकर खिलौना दे गई या राक्षसों और

देवताओं ने कैसे युद्ध किया आदि की कहानियाँ ही बच्चों को अच्छी लगती हैं। इसलिये वे इस प्रकार की कहानियों पर ही अपनी बाल्यावस्था में विशेष ध्यान देते हैं और अपने अभिभावकों को ऐसी कहानियों के ही लिये विवश करते हैं। अभिभावक भी उनका मन बहलाने के लिये ऐसी ही कहानियों को सुनाकर उनका मन बहलाया करते हैं।

अब यहाँ, प्रश्न यह हो सकता है कि बालकों की रुचि इसी प्रकार की कहानियों को ही सुनने में क्यों होती है? इसके उत्तर में यही कहना पर्याप्त है कि संसार के सभी जीव अपने विकास में पुनरावृत्ति करते हैं और यही सिद्धान्त मनुष्य जाति में भी घटित होता है। चूँकि मनुष्य पहले बर्बरावस्था में था और बर्बरावस्था में वह भूत-पिशाच की ही कहानियों में रुचि रखता था और आनन्दित होता था उसी प्रकार बच्चा भी बड़े चाव से राक्षसों और पशु-पक्षी की कहानियाँ सुनता है। यही प्रधान कारण है कि विश्व के जितने भी संस्कृत (civilized) राष्ट्र हैं उनमें बच्चों के लिये कहानियों का कोष भरा पड़ा है। भारतवर्ष में भी पंचतंत्र ग्रन्थ इसी बात का परिचायक है। हाँ, यहाँ का बाल साहित्य उतना भरा हुआ नहीं है जितना कि अन्य सभ्य राष्ट्रों का।

अब हमें अच्छी तरह मालूम हो गया कि बच्चों का मन भूत प्रेतादि की कहानियों को सुनने में अधिक लगता है। इसलिये उन्हें इसी प्रकार की कहानियाँ उनके अभिभावक उन्हें सुनाते हैं और यही कहानियाँ उनकी कल्पना की आधार बन

जाती हैं। फलस्वरूप उनके कल्पनाएँ ग्रहणात्मक (receptive) होने के कारण तदनुरूप ही होती हैं। वे जब किसी दूसरे को भी कहानियाँ सुनाते हैं तो अपनी ही कल्पना के आधार पर भूत-प्रेत और बूढ़ी दादी की ही कहानियाँ सुनाते हैं। बच्चों के काल्पनिक साथी और साथिनियों की भी कमी नहीं रहती है।

अब यहाँ यह भी व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा कि श्रीमती माण्टसरी का मत है कि बच्चों को भूत पिशाच की कहानियाँ नहीं सुनाना चाहिये क्योंकि कहानियों का प्रभाव उनके कोमल मन पर बहुत ही गहरा पड़ता है। इस कारण आगे चलकर ये बच्चे अन्धविश्वासी तथा अवैज्ञानिक बन जाते हैं। लेकिन अन्य मनोवैज्ञानिक इससे सहमत नहीं हैं और उनके अनुसार बच्चों को कहानियाँ सुनाना उनके मानसिक विकास के लिये अत्यंत आवश्यक है; लेकिन इसका ध्यान रखना चाहिये कि उन्हें ऐसी ही कहानियाँ सुनाना चाहिये जिनसे किसी प्रकार उनमें भय तथा क्रोध आदि के संवेग उत्पन्न न हों। उनकी अवस्था के अनुसार उनकी कहानियों मे भी परिवर्त्तन होता रहना चाहिये तभी उनका मानसिक विकास भी कल्पनाओं के द्वारा हो सकता है, अन्यथा नहीं।

CHAPTER 13

CHARACTER AND DELINQUENCY.

(चरित्र और अपराध)

Q. 73.—What is character? Trace the influence of the home and the school in the build-

ing up of the child's character.

चरित्र (character) एक ऐसा पद (term) है जिसको एक छोटी सी परिभाषा द्वारा व्यक्त कर देना कुछ कठिन कार्य है। इसलिये यहाँ हम इसकी परिभाषा के पचड़े में न पड़ कर इसे व्याख्या के द्वारा स्पष्ट करने की चेष्ठा करेंगे।

यों तो चरित्र का प्रयोग विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न रूप से किया है किन्तु यहाँ हम उन सभी प्रयोगों पर विचार न कर अपना काम चलाने के लायक ही प्रयोग पर प्रकाश डालेंगे।

जिस मनुष्य का व्यवहार समाज या वातावरण के माध्यम (standard) के अनुरूप होता है उसे हम चरित्रवान् व्यक्ति कहते है। अगर उसके व्यवहार से समाज का हित होता है तो उसका चरित्र उज्वल समझा जाता है और यदि उसका व्यवहार समाज के लिये घातक सिद्ध होता है तो उसका चरित्र दूषित समझा जाता है। जो मनुष्य चरित्रवान होता है वह स्वयं तो समाज के अनुरूप व्यवहार करता ही है लेकिन दूसरों को भी उसी प्रकार का व्यवहार करने के लिये प्रभावित करता है। चरित्र के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पहलू होते हैं। जिस प्रकार से कोई आदत विशेष दिशा की ओर (मनुष्य की क्रिया को प्रवाहित करती है उसी प्रकार व्यक्ति का चरित्र भी उनकी क्रियाओं को अपने अनुरूप दिशा की ही ओर) प्रभावित करता है। इसलिये कुछ लोगों ने चरित्र को आदतों का पुञ्जमात्र कहा है, (Character is the bundle of habits)। लेकिन यह परिभाषा सर्वांग सुन्दर नहीं कही जा सकती क्योंकि

आदत भली और बुरी दोनों प्रकार को होती है लेकिन चरित्र से हमलोग किसी व्यक्ति के सद्गुणों का ही बोध करते है। जब हम यह कहते है कि राधेश्याम का चरित्र उज्ज्वल एवं अनुकरणीय है तो दूसरे लोग इसका यही मतलब समझते है कि राधेश्याम का चरित्र आदर्शमय (ideal) और नैतिक (moral) है। चरित्र के अन्तर्गत मनुष्य के उन सभी शीलगुणों (traits) का संगठन (organization) रहता है जो समाज के लिये हितकर होते हैं। सत्यता (truthfulness), ईमानदारी (honesty), सामाजिकता (sociability) और उदारता (generosity) आदि चरित्र के ही शीलगुण हैं। यह कहना कठिन है कि किन-किन गुणों का संगठन चरित्र कहलाता है क्योंकि शील गुणो की सख्या घटाई-बढ़ाई जा सकती है।

लोगो का ऐसा दृष्टिकोण था कि मनुष्य का चरित्र सामान्य और निर्धारित होता है अर्थात् जिसका जैसा चरित्र रहता है वह चरित्र सभी काल और स्थान मे समान ही बना रहता है। लेकिन यह दृष्टिकोण सत्य नहीं है। चरित्र स्थिर नहीं होता बल्कि गत्यात्मक (dynamic) होता है। फिर भी किसी व्यक्ति विशेष को चरित्रवान कहना कठिन नहीं जँचता बल्कि उसके व्यवहार अथवा आचरण के साथ ही इस विशेषता (quality) को लगाना चाहिये। मनोवैज्ञानिकों ने चरित्र के गत्यात्मक स्वरूप को जानने के लिये कई एक प्रयोग (experiments) किया है। प्रयोग करने पर देखा गया है कि एक बच्चा एक परिस्थिति में ईमानदार है किंतु वही बच्चा दूसरी परिस्थिति

में वेईमान है। इसलिये लोगों का दृष्टिकोण है कि चरित्र परिस्थिति के अनुसार ही निर्धारित होता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जो बच्चा सत्यवादी है उसकी चित्तवृत्ति (tendency) बराबर सत्यवादिता (truthfulness) की ही ओर रहती है। चरित्र, चूँकि अन्तरप्रेरित तथा व्यवसायात्मक (volitional) होता है इसलिये सयानों के चरित्र में अधिकांश एकरूपता (uniformity or consistency) की संभावना रहती है। क्योंकि सयानों (adults) में बुद्धि (intelligence) और व्यवसाय (volition or will) पूर्णतः विकसित रहती है।

यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तब उसमें चरित्र के किसी भी शील गुण का आविर्भाव नहीं रहता है। इसलिये बच्चा न तो नैतिक कहा जा सकता है और न अनैतिक। उस समय वह जिस ढाँचे मे रख दिया जाता है वैसा ही उसका चरित्र निर्माण भी हो जाता है।

चरित्र निर्माण और उसके विकास (development) में घर अथवा परिवार का प्रभाव (influence) व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि नवजात शिशु (New born child) का मन (mind) एक कोरे कागज के समान रहता है जिस पर हम जो कुछ चाहें वह लिख सकते हैं। जन्म के समय उसमे कुछ सहज क्रियाओ (reflex action) या मूल प्रवृत्तियो (instinctive action) की ही योग्यता विद्यमान रहती है। जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता है वैसे-वैसे अनुभव के द्वारा वह वातावरण के दोष गुणों को सीख लेता है। चूँकि

चरित्र (character) भी बच्चा अर्जित करके ही अपनाता है इसलिये चरित्र विकास में घर का विशेष हाथ रहता है। जिस घर के लोग और जिस बच्चे के माता-पिता उच्चतम नैतिक आदर्शों (moral standard) का परिपालन करतें हैं बच्चा भी उसी आदर्श का परिपालन करने के लिये प्रेरित होता है। बच्चों का प्रारंभिक सीखना प्रायः अनुकरणात्मक (imitative) होता है इसलिये बच्चा निरंतर अपने माता-पिता के व्यवहार को अनुकरण करने का प्रयास करतें रहता है। प्रारंभ में उसे भले बुरे का तो ज्ञान रहता नहीं, इसलिये बिना विचार के अनुकरण करता रहता है और उसी तरह करने की उसे आदत पड़ जाती है। वही आदत भविष्य में चरित्र (character) और स्थायी-भाव का रूप धारण कर लेती है। जिस घर के माता-पिता सत्यवादी तथा उपकारी होतें हैं उस घर के बच्चे भी वैसे ही होतें हैं क्योंकि माता-पिता बराबर अपने ऐसा व्यवहार करने के लिये समझाया करतें हैं। यदि भूल से बच्चा किसी कारणवश उनके सुझाव या आदेशानुसार नहीं करता है तो वह दण्ड का भागी होता है। पुनः दण्ड से बचने के लिये वह उन्हीं के ऐसा आचरण करने लगता है और उसी प्रकार का चरित्र बन जाता है। बाद में उसके सभी कार्य अन्तरप्रेरित हो जातें हैं।

घर के बाद चरित्र विकास (character development) पर पाठशाला (school) का प्रभाव पड़ता है। जब बच्चा पाठशाला जाता है तो उस समय वह बिलकुल अबोध नहीं

रहता उस समय उसकी अवस्था कम-से-कम ५-६ वर्ष की रहती है वहाँ जाने पर उसे अधिक साथियों से मिलने का और सामूहिक जीवन (group life) व्यतीत करने का अवसर मिलता है। वहाँ उस समाज में रहने के लिये उसे अन्य विद्यार्थियों के हित का ध्यान रख कर तो कोई कार्य करना पड़ता है। इसलिये उसकी आदत ही ऐसी हो जाती है कि जब वह किसी क्रिया को करता है तो उसको करने के पहले उसके दोष गुण पर विचार कर लेता है। यदि उससे अधिक लोगों का भला होता है तब तो उसे करता है अन्यथा उसका त्याग कर देता है। उसके अतिरिक्त स्कूल में ही उसे त्याग, उदारता तथा सामाजिकता आदि गुणों को भी सीखने का मौका मिलता है।

शिक्षक उसके लिये आदर्श रहते हैं और वे बराबर उसे उचित अनुचित की शिक्षा देते रहते हैं। जहाँ कहीं उससे कोई गलती हो जाती है उसके सुधार के लिये शिक्षक उपस्थित रहते हैं। शिक्षक स्वयं ऐसे-ऐसे खेलो तथा रचनात्मक कार्यों में बच्चों को लगाते है कि उन्हें कितने गुणों के सीखने का अवसर मिलता है। व्यावहारिक शिक्षा बालकों के चरित्र विकास में विशेष सहायक होती है। बॉयस्काउट आदि कितनी ही ऐसी पाठशालीय संस्थाएँ हैं जिनमें बच्चों को शुभ कार्यों को करने के लिये प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती हैं और वे बच्चे हँसते-हँसते उन प्रतिज्ञाओं को कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी निभाते हैं। इस प्रकार घर और स्कूल में बच्चों का चरित्र निर्माण और विकास

वहुत ही सामान्य रूप से होता है जो प्रौढ़ावस्था में बना रह जाता है।

Q. 74.—Define "Delinquency" What methods are suggested for dealing with delinquent children ?

Delinquency या अपराध को समझने के लिये इतना ही ध्यान में रखना पर्याप्त है कि अपराध (delinquency) एक प्रकार की सामाजिक अभियोजन विकृति (social maladjustment) है। जब कोई व्यक्ति समाज विरुद्ध (antisocial) व्यवहार करता है तो हम लोग उसके व्यवहार को अपराध या delinquency कहते हैं। झूठ बोलना (lying) किसी चीज को चुराना (stealing), क्लास से भाग जाना (truancy) या किसी पर आँख लगाना (sexual offences) आदि को अपराध (delinquent behaviour) कहते हैं क्योंकि ये व्यवहार समाज विहित नहीं है।

अब अपराधी बच्चों (delinquent children) के साथ क्योंकर व्यवहार करना चाहिये या किन-किन उपायों से उनका सुधार हो सकता है, इसको व्यक्त करने के पहले अपराध (delinquency) के कारणों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। तब उपायों तथा पद्धतियों को व्यक्त करना आसान हो जायगा। यहाँ यह भी हमें नहीं भूलना चाहिये कि इस प्रकार के व्यवहार के कारण मनोवैज्ञानिक (psychological) तथा सामाजिक (environmental) दोनों प्रकार के होते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारणों में मानसिक न्यूनता (mental deficiency) अपराध का बहुत ही प्रधान कारण है। जो बच्चे मन्द बुद्धि के होते हैं वे अपराध इसलिये करते है कि उन्हें असामाजिक व्यवहार (antisocial behaviour) के परिणाम का ज्ञान ही नहीं रहता। जिन बच्चों की बुद्धि उपलब्धि (I. Q.) ७० से ९० तक होती है उनमें असामाजिक व्यवहारों का बाहुल्य रहता है। फिर अति बुद्धिमान बच्चे भी असामाजिक व्यवहार करते हुए पाए जाते हैं क्योंकि उनकी बुद्धि जब किसी समुचित कार्य मे नहीं लगाई जाती है तो बेकार रहना पसन्द नहीं करते और फलस्वरूप अपराध के कामों में संलग्न हो जाते हैं।

शारीरिक अभाव (physical defect) भी असामाजिक व्यवहारों का कारण होता है। जब किसी बच्चे में किसी प्रकार का अंग-भंग रहता है या माध्यम (standard) से अधिक बड़ा या छोटा रहता है तो उसमें हीन परिज्ञान की भावना (feeling of inferiority complex) काम करती है। फलस्वरूप उसे अभाव की पूर्त्ति के लिये वह ऐसे अविहित कामों को करता है जिसे अन्य बच्चे नहीं करते हैं। यदि कोई बच्चा शरीर का बहुत नाटा होता है तो वह चोरी करने का काम करके लोगों को ऐसा दिखला सकता है कि मै इसे अच्छी तरह कर सकता हूँ, लेकिन दूसरे नहीं कर सकते हैं।

इन मनोवैज्ञानिक कारणों के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक कारण भी ऐसे असामाजिक व्यवहारों के होते हैं, जैसे, अस-

फलता, (frustration) ; मानसिक द्वन्द्व (mental conflict) दोष का ज्ञान (feeling of guilt) अतिपूर्त्ति की चेष्टा (attempts at over compensation) और संवेगात्मक असंतुलन (emotional instability)। जिस बच्चे की इच्छाएँ संतृप्त नहीं होतीं और जिसे अपने प्रयास में असफलता ही मिलती है वह अन्य इच्छाओं की संतृप्ति अवांछनीय क्रियाओं द्वारा ही करता है और उसी में अपने को संतुष्ट पाता है। इसी प्रकार मानसिक संघर्ष, अतिपूर्त्ति की चेष्टा आदि भी बच्चों को अपराध के कामों में संलग्न कर देते हैं।

वातावरण, सम्बन्धी (environmental) कारणों में घर का वातावरण, अपराध (delinquency) का बहुत ही प्रधान कारण है। दरिद्रता (poverty), घर में अधिक लोगों का होना (over crowding,) घर की दयनीय अवस्था (bad housing condition) आदि इसमें अधिक सहायक होते हैं। दरिद्रता के कारण माता-पिता में बराबर संघर्ष चला करता है और इस लड़ाई के कारण उन्हें बच्चे का लालन-पालन करने के लिये अवसर ही नहीं मिलता। उलटे बच्चे को बराबर फटकार मिला करती है। इतना ही क्यों, एक पक्ष का दोष छिपाने के लिये बच्चे को दूसरे पक्ष का साथी बना लिया जाता है और इस तरह बच्चे में इस दुर्गुण का आविर्भाव माता-पिता की गलतियों के ही कारण हो जाता है। यही प्रभाव अधिक लोगो के एक साथ रहने और गृह की दयनीयावस्था का भी पड़ता है।

परिवार के अनियमित अनुशासन के कारण भी बच्चे अपराधी बन जाया करते हैं। यदि छोटी-छोटी बातों के लिये बच्चे को कठिन-से-कठिन दण्ड दिया जाता है तो बच्चा उस दण्ड से छुटकारा के लिये झूठ बोलना, घर से भाग जाना आदि दुर्गुणों को सीख लेता है। यही प्रभाव बच्चों को स्वतंत्र (free) छोड़ देने से भी पड़ता है। यदि बच्चे को किसी अनुचित कार्य के लिये कुछ दण्ड नहीं मिलता है तो वह निर्भीक बनकर सभी असामाजिक व्यवहारों को करने के लिये प्रोत्साहित होने लगता है।

इन कारणों के अतिरिक्त आनन्द मनोरंजन विश्राम के लिये जब बच्चों को अवसर नहीं मिलता है तब भी वे इस प्रकार के अवांछनीय काम करना शुरू कर देते है जिन्हें समाज अपराध (delinquency) के नाम से पुकारता है। बुरे लोगों के सहवास से भी बच्चे समाज अविहित व्यवहार करना शुरू कर देते हैं। प्रायः ये ही प्रधान कारण अपराध (delinquency) के हैं।

अब प्रश्न होता है कि ऐसे बच्चों के साथ क्या करना चाहिये ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहना पर्याप्त है कि इस दोष का सुधार या निराकरण करने के लिये माता-पिता, शिक्षक तथा अन्य शुभार्थियों को बहुत सावधानी और बुद्धिमानी से काम लेना चाहिये।

पहली बात तो यह है कि माता-पिता को आपस में बहुत आदर्श व्यवहार करना चाहिये ताकि बच्चे पर इसका प्रभाव

अच्छा पड़े। माता-पिता को बच्चे की जानकारी में झूठ बोलने, झगड़ा करने, चोरी करने आदि की आदतों को छोड़ देना चाहिये। प्रायः बच्चे अनुकरण के ही द्वारा किसी कार्य को करना शुरू करते हैं।

दूसरी बात यह है कि माता-पिता तथा शिक्षक को चाहिये कि वे बच्चों पर न तो कठोर (strict) अनुशासन करें और न उसे शिथिल बना दें। यदि बच्चा कोई दोष कर दे और उसे स्वीकार कर ले तो उसे दण्ड कदापि नहीं देना चाहिये बल्कि सत्यता के लिये पुरस्कार देना चाहिये और स्नेह के साथ दुर्गुण को दूर करने के लिये समझा देना चाहिये। इससे बच्चों में अधिक सुधार होता है।

घर की अवस्था तथा वातावरण में विशेष सुधार लाना चाहिये। घर के अभाव को दूर कर देना चाहिये तथा शान्त और आदर्शमय वातावरण उपस्थित करना चाहिये ताकि बच्चा को अविहित व्यवहार करने के लिये कोई उत्तेजना (stimulus) ही न मिले।

यदि बच्चे में किसी तरह का शारीरिक दोष है तो उसकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये और न तो आलोचना ही करनी चाहिये बल्कि नहीं उसकी हीन परिज्ञान की भावना को दूर करने की कोशिश करनी चाहिये ताकि बच्चा ऐसे दोषों से बच सके।

बच्चों को अधिक-से-अधिक अच्छे-अच्छे खेलों के खेलने का अवसर देना चाहिये ताकि उनका मन उसी में लगा रहे और शरारत करने का उन्हें अवसर ही न मिले। इसके

अतिरिक्त बच्चों के साथ बहुत ही स्निग्ध व्यवहार करना चाहिये और उनको इच्छाओं को उचित रूप से सतृप्त करना चाहिये उन्हें सदा अच्छे समाज में रखना चाहिये तथा रहन-सहन आदर्शमय रखना चाहिये। ऐसा करने से बच्चे अपराध के कामों से बच सकते हैं और अपराधी बच्चों का सरलतया सुधार हो सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त कारणों के निराकरण करने का प्रयास इस दोष से बचने का उपाय है।

Q. 75.—When are children called Delinquent ? Suggest some ways for dealing with delinquent children.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ७४ का उत्तर देखिये।

CHAPTER 14

PERSONALITY

(व्यक्तित्व)

Q. 76.—Distinguish between introversion and extroversion with examples.

बच्चे (children) और प्रौढ़ (adults) दोनों ही अपनी-अपनी इच्छाओं की संतृप्ति (satisfaction) प्रत्यक्षतया (directly) तथा अप्रत्यक्षतया (indirectly) करते हैं। किन्तु मनोवैज्ञानिको मे इस सम्बन्ध मे मतभेद (difference of opinion) है क्योंकि कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तर्मुखी (introversion) और वहिर्मुखी (extroversion) का पता लगाना बचपन में कठिन है। परन्तु इस मतभेद

को हटाने के लिये मार्स्टन (Marston) ने ५६ बच्चों जिनकी अवस्था दो वर्ष से लेकर छः वर्ष के अन्तर्गत थी, प्रयोग कर के यह प्रमाणित कर दिया कि बच्चों में भी दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएँ पाई जाती हैं।

अब अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी (introversion and extroversion) के अन्तरों को व्यक्त करने के लिये यह ध्यान में रखना जरूरी है कि जो बच्चा अन्तर्मुखी होता है उसकी रुचि (interest) प्रधानतः उद्देश्यात्मक (subjective) होती है परन्तु बहिर्मुखी की रुचि विधेयात्मक (objective) होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि अन्तर्मुखी बाहरी घटनाओं में हाथ न बँटा कर अपने आप में ही तल्लीन रहता है। लेकिन बहिर्मुखी अपने आप में तल्लीन न रह कर बाहरी घटनाओं में ही अपनी अभिरुचि प्रगट करता है। अन्तर्मुखी परिस्थिति विशेष को समझने की कोशिश नहीं करता बल्कि यह समझने की कोशिश करता है कि वह परिस्थिति (situation) उसे क्यों-कर प्रभावित करती है। परन्तु बहिर्मुखी का स्वभाव इसके पूर्णतः प्रतिकूल होता है क्योंकि वह परिस्थिति को ही समझने की कोशिश करता है उसके प्रभाव को नहीं।

जो बच्चा अन्तर्मुखी (introverted) होता है वह अपने उमर के बच्चों के साथ नहीं खेलता बल्कि वह अकेले खेलना पसन्द करता है। यदि संयोगवश उसे कभी जबरदस्ती बच्चों के साथ छोड़ दिया जाता है तो वह बेचैनी (restlessness) की अनुभूति करता है। लेकिन जो बच्चा बहिर्मुखी होता है वह अपने उमर वाले बच्चों के साथ खूब हिलमिल कर खेलता है और

बराबर उन्हीं के साथ रहना पसन्द करता है। यदि कभी संयोगवश वह अकेले छोड़ दिया जाता है तो उसे वह एकान्त बहुत खटकता है।

अन्तर्मुखी को अकेले रहना केवल रुचिकर ही नहीं प्रतीत होता बल्कि एकान्तवास उसके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी अनिवार्य होता है। एकान्तवास न रहने पर उसका स्वास्थ्य दयनीय हो जाता है। परन्तु बहिर्मुखी के लिये समाज में रहना ही रुचिकर प्रतीत होता है और इससे उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को लाभ भी पहुँचता है।

अन्तर्मुखी बच्चा दूसरों के सुख-दुःख में न तो हाथ ही बँटाता है और न बँटाने की कोशिश ही करता है। उसे दूसरे की तनिक भी परवाह नहीं रहती और अपने आनन्द और विचार में ही मग्न रहता है। लेकिन बहिर्मुखी बच्चा अपने समवयस्क बच्चों के सुख-दुःख का बराबर विचार करता रहता है और वैसे ही कार्यों को करता है जिसे अन्य बच्चे भी करते हैं। अन्तर्मुखी अपने विचार (thoughts) और भाव (feeling) को दूसरे बच्चों के समक्ष प्रकाशित करने में असमर्थ होता है इसलिये दूसरे बच्चे भी उसे स्वार्थी समझ कर छोड़ देते हैं। लेकिन बहिर्मुखी बच्चा अपने विचार तथा भावों को अन्य बच्चों के सामने बहुत अच्छी तरह प्रकाशित करने मे समर्थ होता है, इसलिये दूसरे बच्चे उसे पूर्णतः समझ जाते हैं और उसे अपने समाज म मिला लेते है।

अन्तर्मुखी को मित्रों का अभाव रहता है क्योकि वह अन्य

लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति (sympathy) प्रगट करने में असमर्थ होता है। लेकिन वहिर्मुखी को मित्रों का अभाव नहीं होता वह जहाँ जाता है वहीं अपने मित्रों की एक टोली बना लेता है क्योंकि वह सबों से दिल खोल कर मिलता है।

जो बच्चा अन्तर्मुखी होता है वह निरंतर हीन परिज्ञान की भावना (inferiority complex) से पीड़ित रहता है और सोचता है कि अन्य लोग उससे सभी पहलू में अच्छे हैं। परन्तु बहिर्मुखी बच्चे में इस भावना का अभाव रहता है और अपने में किसी प्रकार की कमी का अनुभव नहीं करता है।

इसलिये अन्तर्मुखी की इच्छाओं की परिपूर्त्ति नहीं होती, वह वास्तविकता (reality) का सामना करने में असमर्थ हो जाता है और अपने को सामाजिक जीवन में असफल पाता है। चूँकि वह अपनी इच्छाओं की संतृप्ति करना चाहता है अतएव अपने दिवास्वप्न में वह उन इच्छाओं की संतृप्ति करता है। दिवास्वप्न में वह सदा अपने को एक पाता है—संसार की सभी कठिनाइयों को दूर कर देता है और सफलता उसके चरणों की चेरी बन जाती है। मान और यश का क्या पूछना—ये तो उसे चारो ओर से मिलते हैं। वह इस प्रकार दिवास्वप्न में मग्न रहता है कि वाह्य विश्व का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रह जाता और फलतः सांसारिक अभियोजन असंभव हो जाता है। लेकिन जो बच्चा वहिर्मुखी होता है वह वास्तविक का सामना बहादुरी और धैर्य के साथ करता है और अपनी इच्छाओं की संतृप्ति समाज के अनुरूप ही करता है। उसे न तो विशेष असफलता

हाथ लगती है और न अभियोजन में उसे किसी प्रकार की कठिनाई होता है। इसलिये उसमें दिवास्वप्न का अभाव रहता है और यदि किसी कारणवश उसमें दिवास्वप्न (day dreaming) का आविर्भाव भी होता है तो वह उसके मानसिक विकास (mental development) में सहायक ही होता है, घातक नहीं। पुनः कुछ समय बाद उसका अन्त भी हो जाता है।

जो बच्चा अन्तर्मुखी होता है वह अन्य बच्चों के हित की कभी चिंता नहीं करता है बल्कि अपने ही हित के चिंतन में मग्न रहता है इसलिये ऐसे बच्चे की कोई प्रशंसा नहीं करते। लेकिन जो बहिर्मुखी होता है वह निरन्तर दूसरे के हितचिंतन में व्यस्त रहता है। उसका विचार अत्यन्त उदार एवं प्रशस्त होता है, इस कारण सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

अन्तर्मुखी किसी विश्वजनीन सिद्धान्त की परवाह नहीं करता लेकिन जो बहिर्मुखी होता है वह अपना कार्यक्रम उसी विश्वजनीन सिद्धान्त के अनुकूल बनाता है, क्योंकि ऐसे सिद्धान्तों की वह सदा इज्जत करता है।

अन्तर्मुखी बच्चे आगे चलकर अपने ही कल्याण के कार्यों में रत हो जाते हैं जैसे ऋषि और महर्षि आदि। परन्तु बहिर्मुखी बच्चों से समाज का अधिकतम उपकार होता है, क्योंकि ऐसे बच्चे आगे चल कर समाज सुधारक, वकील आदि बनते हैं।

अन्तर्मुखी बच्चे प्रायः निराशावादी रहते हैं क्योंकि उन्हें

सांसारिक जीवन में सफलता बहुत ही कम हासिल होती है। लेकिन वहिर्मुखी बच्चे अधिकांशतः आशावादी ही बने रहते हैं क्योंकि उनका स्वभाव (nature) ही ऐसा होता है कि चारों तरफ सांसारिक जीवन में सफलता ही हाथ लगती है।

इसी प्रकार से और भी छोटे-मोटे कितने अन्तर इन दो प्रकार के बच्चों में होते हैं जिन पर यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक नहीं। परन्तु इस सम्बन्ध में यहाँ इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि ये अन्तर अन्तिम कोटि के बच्चों में ही पाये जाते हैं। लेकिन प्रायः बच्चे ऐसे ही होते हैं जिनमें दोनों प्रकार के गुण विद्यमान रहते हैं। ऐसे बच्चों में हम इस प्रकार के अन्तरों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकते क्योंकि कभी तो वे अन्तर्मुखी ऐसा व्यापार प्रदर्शित करते हैं और कभी वहिर्मुखी ऐसा। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि इन दो प्रकार के बच्चों का नितान्त अभाव ही रहता है।

Q. 77.—How would you distinguish between introversion and extroversion ? How can you recognize an introvert child ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ७६ का उत्तर पढ़िये।

Q. 78.—Describe some of the personality maladjustments of early childhood and indicate how they can be remedied.

यों तो बच्चों में maladjustment (अभियोजन विकृति) और मानसिक व्याधियों (mental diseases) का पता लगाना कुछ कठिन-सा प्रतीत होता है लेकिन यहाँ हम कुछ प्रमुख अभियोजन विकृतियों का सङ्क्षिप्ततः वर्णन करेंगे।

अधिकांश बच्चों में ध्यान आकर्षक व्यवहार (attention getting mechanism) देखने में आता है। ऐसी क्रियाएँ उनमें अपनी इच्छा की संतृप्ति (satisfaction of motive) के लिये होती हैं। यदि बच्चे के चुप रहने पर उसके माता-पिता उसकी परवाह नहीं करते हैं तो वह उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये जोर-जोर से रोने लगता है या सिसकियाँ भरने लगता है। उसके ऐसे व्यवहार को देखकर उसके माता-पिता उसे गोदी मे उठाकर पुचकारने और थपथपाने लगते हैं। इससे बच्चे को अधिक संतोष मिलता है। इस बुराई को दूर करने के लिये बच्चे के संरक्षक को चाहिये कि वे उधर विशेष ध्यान न दें और ऐसे व्यवहार की उपेक्षा करें। जब बच्चा अपनी असफलता समझ जायगा तो भविष्य में ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करने की अनावश्यक परिचेष्टा नहीं करेगा।

चालीस प्रतिशत बच्चों में उंगली चूसने (thumb sucking) का भी व्यवहार देखने मे आता है। यह भी ध्यान आकर्षण करने का ही एक साधन है। हाँ, कुछ बच्चे क्षुधा पीड़ित होने पर भी ऐसा करते हैं। लेकिन अधिकतर ऐसा करने से एक विचित्र आनन्द की अनुभूति करते हैं। यदि बच्चों को पूर्णरूपेण खिलाया-पिलाया जाय तो उनमे कुछ ऐसा

करना छोड़ देते हैं लेकिन सभी ऐसा नहीं करते हैं। ऐसा व्यवहार का निराकरण करने के लिये माता-पिता को चाहिये कि वे अपने बच्चे को खूब सुन्दर तरीके से खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध कर दें और उनको इस प्रकार रक्खें कि उसे ऐसा कहने का अवसर ही न मिले। बच्चों को खिलाने-पिलाने के बाद उनके मनोनुकूल खिलौनों को दे देने से ऐसे व्यवहार में कमी आ जाती है क्योंकि उनका हाथ खिलौनों में ही बझा रहता है और उन्हें उँगली चूसने का मौका नहीं मिलता।

बच्चों में बिस्तरे पर पेशाब करने की भी आदत (enuresis) होती है। ऐसा प्रायः तीन कारणों से होता है। पहला कारण तो यह है कि यदि बच्चे के माता-पिता उसकी दीक्षा (training) सुचारुरूप से नहीं देते हैं अथवा इसका पूर्णतः अभाव रहता है तो लड़के पेशाब करने की आदत डाल लेते हैं। बात ऐसी होती है कि जिस समय वे बिस्तरे पर पड़े रहते हैं उस समय पेशाब यदि कर देते हैं तो उनके माता-पिता उन्हें नहीं उठाते है और उसी बिस्तरे पर पड़ा रहने देते हैं। लेकिन संरक्षक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बच्चा ज्योंही मूत्रस्राव (enuresis) करे त्योंही बच्चा को बिस्तर से उठाकर दूसरे स्थान पर कर देना चाहिये। इसकी उपेक्षा करने से बच्चे की यह आदत बहुत दिन तक के लिये बनी रह जाती है।

बच्चों के मूत्रस्राव (enuresis) करने का दूसरा कारण संवेगात्मक उत्तेजना (emotional excitement) होता है।

प्रायः देखा जाता है कि बच्चे को डाँटने फटकारने से उनमें भय उत्पन्न होता है और भय के कारण वह पेशाब कर देता है। बच्चों को डॉटकर भयभीत करना अत्यन्त हानिप्रद होता है और वे मूत्रस्राव के अभ्यस्त हो जाते है। ऐसा करने पर न तो बच्चों को डॉटना ही चाहिये और न उन्हें लज्जित ही करना चाहिये क्योंकि इससे उनकी बुराई दूर नहीं होती, बल्कि और बढ़ जाती है।

तीसरा कारण मूत्रस्राव करने (enuresis) का ध्यान आकर्षण करना होता है। ऐसा करने से बच्चा अपने को आश्रित (dependent) दिखलाना चाहता है और फलतः उसकी ओर संरक्षक का ध्यान चला जाता है। इस बुराई को दूर करने के लिये सुन्दर दीक्षा (training) और स्व सुचारु अभियोजन (self-adjustment) की आवश्यकता है।

पूर्त्ति प्रतिक्रिया (compensation) भी बच्चों में देखने में आता है। जब वे अपने को उचित रूप से अभियोजित करने में असमर्थ पाते है और अपने को हीन समझते हैं तो इस हीनता की पूर्त्ति दूसरे तरह से करते हैं। जैसे जो बच्चा छोटे कद का रहता है या अधिक डरता है तो वह इस दोष को छिपाने के लिये अपनी बहादुरी (bravery) का वर्णन करता है या अपना बल दिखलाता फिरता है। जो बच्चा पढ़ने में कमजोर होता है वह खेल-कूद मे प्रवीण होता है। इस तरह वह अपनी संतृप्ति करता है। इस दोष को दमन (supression) के द्वारा नहीं दूर किया जा सकता बल्कि इसको दूर करने के लिये संरक्षक

को चाहिये कि वे बच्चों को सामाजिक कार्यों में लगा कर 'उन्हें' मान, यश देवें ताकि बच्चों को संतोष मिले। उन्हें अच्छे कार्यों के लिये प्रोत्साहित करना विशेष हितकर होता है।

युक्त्याभास (rationalization) के द्वारा बच्चे अपने दोष को दूसरे के कन्धे पर फेंकते हैं या अपने व्यवहार को युक्ति-संगत (reasonable) व्यक्त करने की कोशिश करते हैं। जब बच्चे को किसी काम में लगाया जाता है और वह उसे करने में असमर्थ होता है तो उसका दोष किसी दूसरे के मत्थे मढ़ देता है। अथवा जो चीज उसे नहीं मिलती है उसी में दोष लगा कर 'अंगूर खट्टे' (grapes are sour) की कथा को चरितार्थ करता है। ऐसा उसी समय होता है जब बच्चा सामाजिक संतृप्ति के साथ-साथ अपनी अन्य इच्छाओं की संतृप्ति चाहता है। प्रायः ऐसा सभी बच्चों में पाया जाता है और इसका निराकरण उन्हें समाज के अनुरूप व्यवहार करने के लिये शिक्षा देकर किया जा सकता है।

विरोधवृत्ति (negativism) भी बच्चों में अधिकांश पाया जाता है। प्रायः ऐसा देखने में आता है कि बच्चे जिस काम को करना चाहते हैं उसमें यदि किसी प्रकार का व्याघात पहुँचाया जाय तो उनमें विरोधवृत्ति का आविर्भाव होता है। यदि कोई बच्चा सोते-सोते खेलना चाहता है और उसकी माता उसे वहाँ से उठाना चाहती है तो वह अपने सम्पूर्ण शरीर को कड़ा कर देता है। यदि किसी बच्चे को कोई शब्द उच्चारण करने को कहा जाता है तो वह उसे उच्चारण करना नहीं चाहता

है। इस दोष को दूर करने के लिये माता-पिता तथा शिक्षक को चाहिये कि वह उसके कारण को जानने की कोशिश करके उसे दूर करें तथा बच्चे को अन्य वांछनीय कार्यों में संलग्न होने के लिये प्रोत्साहित (encourage) करें।

जब बच्चे वास्तविकता (reality) का मुकाबिला करने में असमर्थ होने के कारण अपनी इच्छाओं को संतृप्ति करने में असफल होते हैं तो उनमे (day dreaming) दिवास्वप्न का आविर्भाव होता है। वे अपने मानसिक जगत में अपने को हर तरह से सुखी और सम्पन्न पाते हैं। उस समय उनको हर तरह की काल्पनिक सफलता मिलती है और मान यश की भी कमी नहीं रह जाती। यद्यपि मानसिक विकास (mental development) के लिये दिवास्वप्न बच्चों के लिये कुछ अश में अच्छा होता है लेकिन निरंतर इसी में संलग्न रहना बहुत ही हानिकर सिद्ध होता है। बच्चे समाज से अपने को हटा कर दिन रात इसी में लगे रहते हैं। ऐसे बच्चों को इस बुराई से हटाने के लिये समाज के खेलों में लगाना चाहिये और अन्य साथियों के साथ खेलने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये ताकि उन्हें दिवा स्वप्न का अवसर ही नहीं मिले।

किसी काम से जान बचाने के लिये बच्चों में काल्पनिक (imaginary illness) बीमारी भी देखने में आती है। प्रायः ऐसा देखने मे आता है कि पाठशाला के समय बच्चों के पेट या माथे में दर्द हो जाता है। कभी-कभी बच्चे ऐसा दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये भी करते है। इसको दूर करने के

लिये हम लोगों को चाहिये कि हम बच्चो की ऐसी बीमारियों पर ध्यान न दें और उन्हें कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करें तथा उस बच्चे पर उचित ध्यान दें।

चिन्ता (anxiety) और भय (nervousness) भी बच्चों में देखने में आता है। जब बच्चे अपने को सुरक्षित नहीं समझते है तो वे चिंतित और भयातुर हो जाते है। ऐसी अवस्था में बच्चों को सुरक्षित होने का विश्वास दिलाना चाहिये ताकि उनका भय दूर हो जाय।

यद्यपि ऊपर सभी दोषों को दूर करने का उपाय व्यक्त किया गया है लेकिन इन दोषों को दूर करने के लिये घर तथा पाठशाला का वातावरण शान्त और सुखद रखना चाहिये। बच्चों को खेलने का और अन्य उचित कार्यों के करने का विशेष अवसर देना अत्यावश्यक है।

Q. 79.—Define personality. Give a short account of the development of personality in the child.

व्यक्तित्व (personality) की परिभाषा मनोवैज्ञानिकों ने अपने ढंग से की है। कुछ मनोवैज्ञानिक इस पद (term) का इस्तेमाल व्यक्ति (individual) के रूपरंग (physique) के अर्थ में करते हैं लेकिन यह उचित नहीं है। कुछ लोग इससे मानसिक गुणों (mental abilities) का ही बोध करते हैं लेकिन उनका यह दृष्टिकोण भी ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिनका कहना है कि व्यक्तित्व

(personality) वही है जिसका असर दूसरों पर पड़ता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह व्यक्तित्व का ही प्रसाद है कि हम किसी व्यक्ति विशेष की अनुपस्थिति (absence and presence) और उपस्थिति की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ लोग आन्तरिक पहलुओं पर जोर देते हैं और कुछ लोग बाहरी पहलुओं पर। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि व्यक्तित्व किसी व्यक्ति विशेष के आन्तरिक और बाहरी गुणों का समुच्चय मात्र नहीं है। बल्कि व्यक्तित्व में उसके सभी जन्मजात (inborn) तथा अर्जित (acquired) गुणों का सामंजस्य या संगठन (organization or intergration) इस प्रकार रहता है कि उनमें से कोई भी न्यूनाधिक नहीं किया जा सकता और न निकाला ही जा सकता है। जब उन शीलगुणों (traits) का विच्छेद (dissociation) होता है तो व्यक्ति में असाधारणता (abnormality) आ जाती है। अतएव हमलोगों के दृष्टिकोण से व्यक्तित्व किसी व्यक्ति विशेष के स्वाभाविक तथा अर्जित शीलगुणों का संगठन (integration) है जिसकी वजह से वह अन्य लोगों को प्रभावित करता है या उनसे भिन्न रहता है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं व्यक्तित्व वही है जिसकी वजह से किसी की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का ज्ञान होता है। यद्यपि व्यक्तित्व सभी लोगों में होता है किंतु इसका समुचित विकास समाज में ही होता है।

अब बच्चे के व्यक्तित्व विकास (development of personality) पर प्रकाश डालने के लिये यह व्यक्त कर देना

आवश्यक है कि व्यक्तित्व विकास निम्नांकित अंगो (factors) पर निर्भर करता है:—(१) शारीरिक बनावट (physical structure), (२) बुद्धि (mental ability), (३) संवेगात्मक जीवन (emotionality,) (४) रुचिर और योग्यता (interest and aptitude) तथा वातावरण (environment) जिनका वर्णन हम यहाँ क्रमशः संक्षिप्ततः करेंगे।

(१) शरीर रचना (physical.structure)—इसके पहले कि हम शरीर रचना के प्रभाव का व्यक्तित्व विकाश में प्रकाश डालें यह कह देना जरूरी है कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उसी समय उसमे बहुत से शीलगुण (traits) जिन्हें कि वह वंशानुक्रम (heredity) से प्राप्त करता है विद्यमान रहते हैं। परन्तु उनका विकाश वातावरण के संयोग तथा शिक्षा से होता है। आदतों (habits) और प्रकृति, (attitude) का विकाश प्रारंभिक छः वर्षों में ही होता है जो आजीवन बने रहते हैं।

अब बच्चे की शारीरिक बनावट पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना जरूरी है कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तो वह बहुत सुडौल होता है अथवा बहुत ही बेतुका होता है। यदि बच्चा बहुत ही हट्टा कट्टा रहता है तो उसके माता-पिता बहुत खुश होते हैं और अन्य लोगों से उसकी बड़ाई किया करते हैं। जब बच्चा कुछ समझने लगता है तो वह अपनी प्रशंसा सुनकर फूला नहीं समाता और उसमें अहंकार की भावना काम करने लगती है। वह अपने को किसी से छोटा नहीं समझता। यह जीवन में सफल तो होता है लेकिन उसमें कई

बुराइयाँ आ जाती है। इसी तरह जो बच्चा कमजोर, कुरूप अथवा किसी दोष के साथ उत्पन्न होता है तो उसके माता-पिता उसे अन्य लोगों को व्यक्त करते हैं और उसकी हँसी उड़ाते हैं। फल यह होता है कि बच्चे में हीन परिज्ञान की भावना (inferiority complex) काम करने लगती है। वह अपने को अन्य बच्चों से हीन समझने लगता है और इस डर से किसी से मिलना नहीं चाहता। अतएव वह समाज के योग्य अपने को अभियोजित करने में असमर्थ हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अपनी हीनता की भावना से पीड़ित होने के कारण अपने को योग दिखलाने के लिये किसी बुरी आदत को डाल लेता है। इसलिये माता-पिता के लिये अनिवार्य है कि बच्चा कैसा भी हो उस पर आवश्यकता से अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये। बच्चे को यह नहीं मालूम होने देना चाहिये कि उसमें अमुक दोष है। वस्तुतः बच्चों के व्यक्तित्व में विशेष हाथ संरक्षक का ही रहता है अतएव अवांछनीय आलोचना या प्रशंसा हितकर नहीं। बच्चे की शरीर रचना के सम्बन्ध में कम-से-कम आलोचना विवेचना करना चाहिये तथा उसे उसकी रचना के सम्बन्ध में बराबर प्रोत्साहित करते रहना चाहिये।

व्यक्ति का धातु स्वभाव (temperament) उसके संवेगात्मक जीवन (emotional life) को प्रभावित करता है। धातु स्वभाव endocrine glands के स्राव (secretion) पर निर्भर करता है। endocrine gland का हाथ बच्चे के

शारीरिक विकास (physical development) में बहुत अधिक रहता है। इन्हीं के चलते कोई बच्चा हट्टा-कट्टा होता है तो कोई रुग्ण, कोई लम्बा होता है तो कोई छोटा। पुनः कोई शान्त चित्त होता है तो कोई चंचल और कोई क्रोधी होता है तो कोई हँसमुख। शारीरिक और धातुस्वभावात्मक विकास इन्हीं ग्रन्थियों (glands) पर निर्भर करते हैं।

बुद्धि या मानसिक योग्यता (intelligence) भी व्यक्तित्व विकास का एक प्रधान अंग (factor) है। एक बुद्धिमान बच्चा किसी परिस्थिति को बहुत ही शीघ्र समझ जाता है तथा अपने गत अनुभव (past experience) इस्तेमाल भी करता है। कुन्द-मिजाज बच्चे (dull children) सामाजिक वातावरण में अपने को अच्छी तरह अभियोजित (adjust) करने में असमर्थ होते हैं। वे न तो अपने गत अनुभव का प्रयोग ही करना जानते हैं और न कोई चीज जल्दी समझते ही है। परन्तु बुद्धिमान बच्चे अपने को सामाजिक वातावरण के अनुरूप आसानी से बना लेते हैं।

सामाजिकता और वंशानुक्रम के संघर्ष स्वरूप ही तो व्यक्तित्व विकास होता है। बच्चों का स्वभाव (nature) ही ऐसा होता है कि वे जिस प्रकार के ढाँचे में ढाले जाते हैं वे वैसा ही बन जाते है। बच्चे सीखते भी शीघ्रता के साथ ही हैं। जैसा कि हमलोग जानते हैं। व्यक्तित्व के सभी शील गुण (traits) जन्मजात (inbron) ही नहीं होते कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें हम अपने जीवन मे ही अर्जित करते हैं। सामाजिक

वातावरण तथा माता-पिता का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व विकास में अत्यधिक देखने में आता है। जो माता-पिता अपने बच्चों को अन्य बच्चों से मिलने देते हैं वे बच्चे सामाजिक होते हैं। लेकिन जो अपने बच्चों को समाज में रहने का अवसर नहीं देते वे असामाजिक बन जाते हैं।

बच्चों को सामाजिक माध्यम (social standard) का ज्ञान नहीं रहता इसलिये उनका व्यवहार कभी-कभी ऐसा होता है जिनके लिये उन्हें माता-पिता के द्वारा दण्ड मिलता है। कुछ व्यवहारों के लिये उनकी प्रशंसा भी होती है। यों तो कुछ अंशों में उन्हें किसी अनुचित व्यवहार को मना करने के लिये दंड देना अच्छा ही होता है लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि माता-पिता के इस व्यवहार का असर बच्चों पर अमिट पड़ता है। इसी के फलस्वरूप कुछ लड़के आज्ञाकारी तथा कुछ बच्चे उद्दण्ड बन जाते हैं। इतना ही क्यों, वे आशावादी और निराशावादी भी इसी कारण बन जाते हैं।

इतना ही नहीं, बल्कि माता-पिता का प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व पर यहाँ तक पड़ता है कि जो माता पिता अपने बच्चों की अनावश्यक देख-भाल और परिचर्या करते है वे बच्चे सदा परावलम्बी बने रहते हैं और अपने आप करना कुछ भी नहीं सीखते हैं—उनकी यही अवस्था सदा के लिये रह जाती है। लेकिन जो माता-पिता अपने बच्चों को स्वय करने का अवसर देते है वे बच्चे स्वावलम्बी बनते है और कभी किसी की परवाह नहीं करते है। बच्चों की अनावश्यक आलोचनाएँ (critic-

sms) भी बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिये घातक सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार अत्यधिक प्रशंसा भी। इसलिये सुचारुरूप से व्यक्तित्व विकास के लिये माता-पिता तथा शिक्षक की सावधानी आवश्यक है।

Q. 80.—Distinguish between introversion and extroversion. How does an introvert react to different situations in life ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ७५ का उत्तर पढ़िये उसीमें प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर भी सन्निहित है।

Q. 81.—What is meant by emotional stability ? What part does it play in the development of personality ?

संवेगात्मक स्थिरत्व (emotional stability) को समझने के लिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्राणी (organism) में ज्ञानात्मक (cognitive), इच्छात्मक (conative) और भावात्मक (affective) तीन प्रकार के अनुभव (experience) पाए जाते हैं। यों तो तीनों अनुभव साथ-साथ रहते है किंतु एक समय में किसी एक ही अनुभव का प्राधान्य (prominence) रहता है। इन अनुभवों की सामान्यावस्था (normal state) प्राणी के लिये अत्यंत हितकर सिद्ध होती है और वह अपने को वातावरण में सुचारुरूप से अभियोजित करने में भी समर्थ होता है। इस कारण उसका जीवन भी सुखमय बना रहता है।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि संवेग क्या है और संवेगात्मक स्थिरत्व क्या है ? इसके उत्तर में यही कहना पर्याप्त है कि संवेग (emotion) का सम्बन्ध हमारे मानस जीवन के भावात्मक पहलू (affective aspect) से है जिसका आविर्भाव किसी परिस्थिति विशेष की कल्पना, स्मृति या प्रत्यक्ष से होता है। जब हम किसी प्रकार का सवेग अनुभव करते हैं तो उसके साथ-साथ किसी प्रकार का भाव भी रहता है। भय, क्रोध, विषादादि संवेग कहलाते हैं। जब हमारी क्रिया वृति में किसी प्रकार की रुकावट पड़ती है या इच्छाएँ कुचल दी जाती हैं तो किसी अवांछनीय संवेग का आविर्भाव होता है और जब इच्छाओं की संतृप्ति होती है और क्रिया अच्छी तरह होती है तो क्रोध विषादादि के संवेग उत्पन्न होते हैं। संवेग वह जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें जीव अत्यन्त सजीव बन जाता है। सवेग के समय जीव के अन्तर्जगत में हलचल मच जाती है। यह हमलोगों का व्यक्तिगत अनुभव है और इसमें विचार शक्ति में कमी पड़ जाती है। जब सवेग का प्रकाशन नहीं होता तो वह दूसरी तरह से प्रकाशित होता है।

अब सवेगात्मक स्थिरत्व (emotional stability , की व्याख्या करने के लिए यह ध्यान में रखना जरूरी है कि संवेगात्मक स्थिरत्व का साधारण अर्थ परिस्थिति (situation) के अनुरूप सवेग प्रकाशित करना या व्यवहार करना है इसको और भी सरल करने के लिए हम कह सकते हैं कि संवेगात्मक स्थिरत्व वही है जिसके चलते मनुष्य किसी प्रकार की भी परि-

स्थिति में अपने को अभियोजित करके समाज के अनुरूप बना लेता है और इस प्रकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। साधारणतः सवेगों का नियंत्रण ही सवेगात्मक स्थिरता कहा जा सकता है। यदि हम परिस्थिति और अवस्था (age) अनुरूप सवेग का प्रकाशन करते हैं तो उसमें संवेगात्मक स्थिरता ही पाई जाती है किंतु यदि अवस्था (age) और परिस्थिति के अनुरूप संवेग का प्रकाशन नहीं करते हैं तो सवेगात्मक अस्थिरता ही कहा जायगा। मान लीजिये कोई प्रौढ़ अपनी इच्छाओं की संतृप्ति के लिए या दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए बच्चों सा नासमझी का व्यवहार करता है तो हम यही कहेंगे की इसमें संवेगात्मक अस्थिरता है। किंतु यदि वही व्यक्ति परिस्थिति और समाज के अनुरूप व्यवहार करता है तो हम उसमें संवेगात्मक स्थिरता पाते हैं। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते है। कि सवेग की परिपक्वता (maturity of emotion) ही संवेगात्तक स्थिरता है और संवेग की अपरिपक्वता (inmaturity of emotions) ही संवेग की अस्थिरता है।

अब सवेगात्मक स्थिरत्व (emotional stability) का प्रभाव व्यक्तित्व विकास (development of personality) पर दिखलाने के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इसका हाथ व्यक्तित्व विकास में अत्यधिक है। जैसा कि हम लोग जानते हैं व्यक्तित्व विकास के कई अंग (factors हैं। उन सभी अगों में इसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि

मनुष्य इसी के चलते अपने सामाजिक जीवन में सफल होता है।

जिस बच्चे में संवेगात्मक स्थिरत्व है वह बच्चा हीन परिज्ञान की भावना (inferiority complex) अवांछनीय संवेगादि से स्वतंत्र रहता है। इसलिये वह अपने को समाज के योग्य बनाने में सफल होता है। वह जिस परिस्थिति में पड़ता है उसीमें सफल मनोरथ होता है और अपने व्यक्तित्व से अन्य लोगों को भी प्रभावित करता है। वह अपने चातुर्य के कारण सब का स्नेहपात्र बन जाता है और सभी लोग उससे संतुष्ट भी रहते हैं। वह ऐसा कोई व्यवहार नहीं करता जो समाज के माध्यम से विरुद्ध रहता है। ऐसा बच्चा अनावश्यक निरोध (restraint) से कभी क्षुब्ध नहीं होता। इतना ही क्यों, उसमें भय जैसे दारुण एवं घातक संवेगों का नामोनिशान भी नहीं रहता। वह कठिन-से-कठिन कार्य को करके दूसरों के लिये आदर्श बन जाता है।

संवेगात्मक स्थिरत्व के ही कारण मनुष्य में सामाजिकता आती है। जिसमें यह गुण पाया जाता है वह समाज के लोगों से दिल खोल कर मिलता है और वह सदा ऐसे ही व्यवहार को करने की कोशिश करता है जिससे समाज के अधिक-से-अधिक लोगों का कल्याण हो। ऐसा व्यक्ति कभी निराश नहीं होता और संसार को एक कर्मक्षेत्र समझता है। वह अपनी छाप लोगों पर इस प्रकार डाल देता है कि सभी लोगों के आदर और सत्कार का पात्र बन जाता है। उसका क्षेत्र सीमित नहीं रहता बल्कि अत्यंत प्रशस्त हो जाता है। यदि

हम महात्माजी को उदाहरण में लें तो हमें मालूम होगा कि उनमें संवेगात्मक स्थिरता ही थी कि उनके व्यक्तित्व का विकास इस कोटि का हो सका कि सभी उनका लोहा मानते थे और श्रद्धा-भाव से उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे। संवेगात्मक अस्थिरता के ही कारण कुछ लोग बात-बात में क्रुद्ध हो जाते हैं या दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये ऐसे व्यवहारों का प्रदर्शन करते हैं जो उनके योग्य नहीं होते। फलस्वरूप सभी लोग उनसे खिन्न हो जाते हैं और वह व्यक्ति निन्दा का पात्र बन जाता है और इस प्रकार उसका व्यक्तित्व विकसित नहीं होता।

जिस व्यक्ति में संवेगात्मक स्थिरता रहती है वह सभी के साथ समुचित व्यवहार करता और कभी भी किसी प्रकार का अवांछनीय व्यवहार प्रदर्शित करने की कोशिश नहीं करता। इसी के फलस्वरूप वह अपने को अन्य लोगों से आगे पाता है।

प्रायः हमलोग अपने में कहा करते हैं कि भाई अमुक व्यक्ति कभी किसी से कटु व्यवहार नहीं करता इसलिये सभी लोग उससे संतुष्ट रहते हैं। ये सभी गुण संवेगात्मक परि-पक्वता के ही कारण होते हैं जो व्यक्तित्व विकास में अत्यधिक सहायता पहुँचाते हैं।

जिस बच्चे में संवेगात्मक स्थिरत्व रहता है वह अपने को समाज के अनुरूप बना लेता है और इस तरह उसका व्यक्तित्व विकास सुचारुरूप से होता है। जिसमें संवेगों को नियंत्रित करने की क्षमता होती है उसमें व्यक्तित्व विच्छेद या मानसिक

व्याधि (dissociation of personality or mental disease) का अभाव रहता है और व्यक्तित्व पूर्णरूपेण विकसित होता है।

Chapter 15

MISCELLANEOUS
(फुटकर)

Q. 82.—Write short notes on.—

(a) Intelligence tests. (b) Delinquent children, (c) Fear in children.

(a) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३४ का उत्तर देखिये।

(b) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७४ का उत्तर देखिये।

(c) इस प्रश्न के लिये प्रश्न नम्बर ४३ का उत्तर पढ़िये।

Q. 83.—Write short notes on any two of the following :—

(a) The questionaire method, (b) Anger in children, (c) Introvert children.

(a) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न न० ५ का उत्तर देखिये।

(b) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ४२ का उत्तर देखिये।

(c) इस प्रश्न के लिये प्रश्न न० ७६ का उत्तर देखिये।

Q. 84.—Write short notes on :—

(a) Children's imagery, (b) Children's lies, (c) Children's drawing

(a) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६७ का उत्तर देखिये।

(b) Children's lies—

यदि बच्चे के मिथ्याभाषण (lying) पर विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि झूठ बोलने की आदत का सम्बन्ध चोरी से बहुत ही घनिष्ठ है। प्रायः देखने में आता है कि जो बच्चे खाने-पीने की कोई चीज चुराते हैं तो वे अपनी माता से पूछे जाने पर दण्ड की डर से झूठ बोलकर अपनी जान बचाना चाहते हैं। इतना ही नहीं, हीन परिज्ञान की भावना (inferiority complex) से भी झूठ बोलने की आदत का आविर्भाव होता है।

यदि बच्चे ऐसे वातावरण में पालित-पोषित (brought up) होते हैं जहाँ माता-पिता सत्य और नैतिकता पर विशेष जोर देते हैं तो बच्चे को झूठ बोलने का अवसर कम मिलता है। परन्तु जिस बच्चे के माता-पिता बराबर एक-दूसरे से झूठ बोलते रहते हैं या बच्चे को भी झूठ बोलने के लिये विवश करते हैं वह बच्चा झूठ बोलने लगता है। झूठ बोलने का एक प्रधान कारण यह भी है कि बच्चे सत्ता और कल्पना (fantacy) को अलग-अलग करने में असमर्थ होने के कारण भी झूठ बोलने लगते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि वे सत्य ही कह रहे हैं।

कभी-कभी अपने को गौरवान्वित करने के लिये भी बच्चे झूठ बोलते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने, अपने को अधिक जानकार साबित करने के लिये भी वे झूठ बोलना शुरू करते हैं। इस तरह विचार करने पर मालूम होगा कि झूठ बोलने का प्रधान कारण वातावरण, बच्चों में हीन परिज्ञान की भावना, दण्ड से बचने का विचार, दूसरों से सहानुभूति और प्रशंसा पाने की भावना आदि हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि इस दोष से बच्चों के लिये बचाया कैसे जाय ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि माता-पिता को स्वयं झूठ नहीं बोलना चाहिये और बच्चे को प्रेम के साथ सत्य (truth) की महत्ता व्यक्त करनी चाहिये। यदि वे कोई गलती करदें और स्वीकार करले तो सत्य बोलने के लिये उन्हें पुरस्कृत करना चाहिये। अगर कोई बच्चा झूठ बोलता हो तो उससे यह नहीं कहना चाहिये कि तुम झूठ बोलते हो बल्कि कहना चाहिये कि मुझे विश्वास है कि तुम ऐसी कोई बात न छिपाओगे जिससे तुम्हारा अनहित हो या जिससे मैं तुम्हें अच्छी बातें बताने मे असमर्थ हो जाऊँ। इस प्रकार यह दोष विचारपूर्वक ही दूर करने की कोशिश करना चाहिये।

(d) Children's drawing—

इस प्रश्न पर विचार करने के लिये हमलोगों को यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि बच्चों की चित्रकारी (drawing) उनकी अवस्था के साथ बदलती रहती है। यद्यपि उनके चित्र लापरवाह निरीक्षक को निरर्थक प्रतीत होते हैं लेकिन उनके

लिये वे बहुत महत्व के होते हैं। मनोविश्लेषण के पण्डितों ने उनकी चित्रकारियों को बहुत ही ऊँचा स्थान दिया है क्योंकि उनका कहना है कि बच्चे की मानसिक अवस्था के संवेगात्मक (emotional) तथा संघर्षात्मक (conflicting) आदि पहलुओं का ज्ञान चित्रकारी से ही हो सकता है।

यदि बच्चों कि प्रारंभिक चित्रकारी पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि बच्चे प्रारंभ में कोई चित्र नहीं बना सकते। यदि उन्हें कागज पेंसिल दे दिया जाय तो वे पेंसिल से कागज को खराब करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकते, यह भले ही हो कि उसमें किसी पदार्थ (object) का चित्र संयोगवश तैयार हो जावे। तीन चार वर्ष की अवस्था में वे आदमी का चित्र बनाने का प्रयास करते हैं—वे चित्र दौड़ते हुए या तम्बाकू पीते हुए होते हैं। इस अवस्था में वे स्थिर पदार्थों का चित्र बनाने में अपनी अभिरुचि (interest) नहीं दिखलाते। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उनके ये चित्र बहुत बारीक होते हैं। चित्र बारीक नहीं होते बल्कि बहुत अधूरे होते हैं और बच्चे के लिये वे प्रतिरूप (representation) का काम करते हैं।

पाँच से सात वर्ष की अवस्था वाले बच्चों से चित्र बनाने के लिये कहा जाता है तो वे किसी पदार्थ के उन्हीं अंगों को अपने चित्र में प्रदर्शित करते हैं जिनका कि वे नित्यप्रति इस्तेमाल करते हैं। जिन अंगों की उपयोगिता उनके जीवन में नहीं रहती उनकी वे पूर्णतः उपेक्षा कर देते हैं। इस अवस्था के चित्र आदिमवासी के चित्रों से मिलते-जुलते हैं।

दस वर्ष तक की अवस्था के बच्चों के चित्र में पूर्णता तो नहीं आती लेकिन सुधार हो जाता है। ग्यारहवें वर्ष से बच्चे अपने चित्रों में त्रयविस्तार (three dimensions) भी दिखलाने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार उनकी अवस्था की विवृद्धि के साथ-साथ उनकी चित्रकारी में भी उन्नति होती जाती है। चित्रकारी की उन्नति उनकी भाषा विकास पर भी विशेष रूप से प्रकाश डालती है।

यहाँ इस सम्बन्ध में यह व्यक्त कर देना अप्रासंगिक न होगा कि बच्चों की चित्रकारी की विश्लेषणात्मक महत्ता (usefulness) आधुनिक काल में विशेष रूप से बढ़ गई है। जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है फ्रायडवादियों का मनोविश्लेषण आज कल इसी आधार पर होता है क्योंकि उनका कहना है कि बच्चे की चित्रकारी से उनके मानस जीवन पर प्रकाश पड़ता है। जिस बच्चे को अपने शिक्षक या माता-पिता से द्वेष रहता है वह अपनी चित्रकारी के ही द्वारा अपनी दबी हुई भावनाओं का प्रकाशन करता है। इस प्रकार चित्रकारी के द्वारा उन दमन (repressed) की हुई इच्छाओं की संतृप्ति होती है। दूसरी बात इस सम्बन्ध में महत्त्व की यह है कि उनकी चित्रकारियाँ बच्चों की कल्पना शक्ति की भी परिचायक होती हैं। बच्चे अपनी कल्पनाशक्ति के ही अनुरूप अपनी चित्रकारियों का रूप देते हैं।

Q. 85.—Write notes on.—

(a) Delinquency, (b) Nature of play

(a) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ७४ का उत्तर देखिये।

(b) इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ६० का उत्तर पढ़िये।

Q. 86.—Write notes on:—

(a) Reflexes and (b) Growth in child's vocabulary.

(a) इस प्रश्न के लिये प्रश्न नम्बर २१ का उत्तर पढ़िये।

(b) इस प्रश्न के लिये प्रश्न नम्बर ४६ का उत्तर पढ़िये।

Chapter 16

PATNA UNIVERSITY I.A. QUESTIONS AND ANSWERS.

(पटना विश्वविद्यालय के आइ० ए० के प्रश्नोत्तर)

1944 (ANNUAL)

Q. 1.—Describe briefly the purposes and methods of child study ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० २ और ५ देखिये।

Q. 2.—Trace the emotional developments of children with special reference to love.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ४० देखिये।

Q. 3.—What is maturation ? Explain and illustrate the influence of maturation on children's behaviour.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० १२ देखिये ।

Q. 4.—Give a brief account of the reactions of children to social environments during their early life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५१ देखिये ।

Q. 5.—What is play? Describe briefly the influence of play on the child life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६० देखिये ।

Q. 6.—Trace the development of language in early childhood.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५६ देखिये ।

Q 7.—Distinguish between introversion and extroversion with examples.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७६ देखिये ।

Q. 8.—What is imagination? Show how it is revealed in children's drawing and story?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६६ देखिये ।

Q 9.—Write notes on any two of the following.—

(a) Intelligence test. इसका उत्तर देखिये प्रश्न न० १४ में ।

(b) Delinquent children. इसका उत्तर देखिये प्रश्न न० ७४ में ।

(c) Fear in children. इसका उत्तर देखिये प्रश्न न० ४३ में।

1944 (SUPPLEMENTARY)

Q. 1—What is child Psychology ? Point out some important differences between an adult and a child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३ देखिये।

Q. 2.—What is intelligence ? How is it measured ? State the uses of the measurement of intelligence ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३४ देखिये।

Q. 3.—What do you consider to be the early emotional responses ? Show their developments with example ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५० देखिये।

Q. 4.—What is reflex action ? What are its different forms ? Describe the part it plays in children's behaviour.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० २२ देखिये।

Q. 5—Describe the characteristics of childrens's imagery, and show how imagery changes with age.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६७ देखिये।

Q. 6.—'Children learn by doing.' Explain this statement fully.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३० देखिये।

Q. 7.—Show how the mental life of a child is influenced by his parent's behaviour.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५७ देखिये।

Q 8,—What is meant by emotional stability? What part does it play in the development of personality?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ८१ देखिये।

Q. 9.—Write short notes on any two of the following :—

(a) The questionaire method.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५ देखिये।

(b) Anger in children—

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ४२ देखिये।

(c) Introvert children—

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५६ देखिये।

1945 (ANNUAL)

Q. 1—Describe the main types of original responses in children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० २३ देखिये।

Q 2.—State briefly the chief characteristics of children's thinking.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० २५ देखिये।

Q. 3.—Explain the features of early emotional patterns connected with anger and love.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ४२ देखिये।

Q. 4.—Describe the children's contact with the adults and other children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५५ देखिये।

Q. 5.—Trace the development of language in the incherent babbling of children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ४६ देखिये।

Q 6.—Distinguish between work and play. Give examples to illustrate the different functions of the play.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६१ देखिये।

Q. 7.—Show how children's imagination is first characterised by the fairy tales element.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७१ देखिये।

Q. 8.—Describe the chief methods of measuring intelligence.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३४ देखिये।

Q. 9.—Define, delinquency? What methods are suggested for dealing with delinquent children ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७४ देखिये।

1946 (ANNUAL).

Q. 1.—Give a general idea of the sensory motor development of the child in the first year of life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० १७ और १८ देखिये।

Q. 2.—What are the chief causes of fear and anger in the early life of the child ? Indicate in what different ways a child usually reacts to situation provoking anger in him.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ४२ देखिये।

Q. 3.—Trace the development of concepts in the child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० २६ देखिये।

Q. 4.—Indicate the main stages of social development of pre-school child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५६ देखिये।

Q. 5.—Explain, how play helps the proper development of child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६२ देखिये।

Q. 6.—Show your acquaintance with some tests that may be used for measuring the intelligence of the pre-school children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३४ और ३५ देखिये।

Q. 7.—Describe the main stages in the

language development of the child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं ५१ और ४६ देखिये।

Q. 8—In what respects do children's drawing differ from that of adults? Try to explain the differences.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७१ देखिये।

Q. 9.—What do you mean by emotional stability? Indicate the more important causes of emotional instability.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ८१ और ४४ देखिये।

1946 (SUPPLMENT)

Q. 1.—Give an idea of the problems that child Psychology deals with.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं १ देखिये।

Q. 2.—Describe the capacity that child has at birth.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० २३ देखिये।

Q. 3.—Write a note on the imagination of the young child as indicated in his play.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७० देखिये।

Q. 4.—What is intelligence? Explain how can it be measured?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३४ देखिये।

Q. 5.—How would you distinguish between

introversion and extroversion ? How can you recognise an introverted child ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ५६ देखिये।

Q. 6.—What do you mean by Emotional patterns ? Indicate in what different ways a little child can express its fear ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न न० ४० और ४४ देखिये।

Q. 7.—What is maturation ? How would you distinguish it from learning ? Show how they are inter-related in the development of a child.

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न न० १२, १३ एवं १४ देखियें।

Q. 8.—Describe the main stages of child development in a general way ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रश्न न० २० देखिये।

Q. 9.—When does the child begin to react to society ? Indicate some forms of early social reactions of the child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५४ देखिये।

1947 (ANNUAL)

Q. 1.—What methods have been used in the study of the children ? Consider briefly the advantages and disadvantages of each of these methods.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५ देखिये।

Q. 2.—Give a brief account of the sensory motor development of a child in the early years of life ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १७ और १६ देखिये।

Q. 3—What do you understand by heredity? Do you agree with that what the child will be like in future is determined solely by heredity, if not, why not ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६ देखिये।

Q. 4.—Explain the different methods employed in children in learning new responses.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६१ देखिये।

Q. 5.—Can you distinguish between play and work ? Explain briefly the functions and value of the same in child's life ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न ६१ देखिये।

Q. 6—Describe, some of the functions of personality maladjustment of early childhood and indicate, how they can be remedied ?

इसके उत्तार के लिये प्रश्न न० ७८ देखिये।

Q. 7.—What are the chief characteristics of children's thinking ? How does the thinking of a child differ from that of an adult ?

इसके उत्तार के लिये प्रश्न न० २५ और २६ देखिये।

Q. 8.—State and illustrate different factors influencing the speech development in children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५२ देखिये।

Q. 9.—Write notes on :—

(a) Children's imagery (b) Children's lies (c) Children's drawing.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० (a) ६७ और (b), ८३ (b) ८३ (c) देखिये।

1947 (SUPPL.)

Q. 1.—In what sense child psychology is a science ? How can the knowledge of child psychology help parents and teachers ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६ देखिये।

Q. 2.—What is reflex action ? Mention its different forms as found in child. Does it play any part in the learning process of the children?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० २१ देखिये।

Q. 3.—Trace the development of social life of a child during the first few years of life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५३ देखिये।

Q. 4.—What are the causes of fear and anger in children ? Indicate how child reacts to situation provoking fear and suggest some ways of handling children's fear ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ४२, ४१ और ४५ देखिये।

Q 5.—Describe briefly the theories of play.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६१ देखिये।

Q. 6.—What role does imagination play in the child's life? Illustrate your answer with the help of children's drawing.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६८ देखिये।

Q. 7.—When are children called delinquent? Suggest some ways for dealing with delinquent children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७५ देखिये।

Q 8—What is intelligence and how can it be measured? What are the practical uses of the measurement of intelligence?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ३४ देखिये।

Q. 9.—Write notes on :—

(a) Questionaire method.

(b) Anger in children.

(c) Introvert children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० (a) ५, (b) ४२, (c) ७६ देखिये।

1948 (ANNUAL)

Q 1.—Is child Psychology a science? How are experiments made in child study? Illustrate.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७ देखिये।

Q. 2.—What is maturation ? Give examples. Write a short note on the mental equipment of the new-born child (infant).

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १५ देखिये।

Q. 3.—Give example of the fear responses of the child. How can fears be eliminated?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ४७ देखिये।

Q. 4.—Describe the role of imagination in the child's drawing and Story-telling.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६९ देखिये।

Q. 5.—What are the principal ways of child learning? What are the effect of practice in a child learning?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १२ देखिये।

Q. 6.—What are main social responses that you observe in the child during the early years of life? How far does environment affect social development?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५१ देखिये।

Q. 7.—What is character? Trace the influence of the home and the school in the building up of the child character.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७२ देखिये।

Q. 8.—Define personality? Give a short

account of the development of personality of a child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७६ देखिये।

Q. 9.—Write notes on—

(i) Delinquency. (ii) Nature of play.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० (i) ७४ (ii) ६० देखिये।

1948 (SUPPLEMENTARY)

Q. 1.—What is child Psychology? What is its scope and value?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १ देखिये।

Q. 2.—What is heredity? Explain the principles of the operation of heredity.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १० देखिये।

Q. 3.—Trace the motor-development of the child in the early years of age.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १६ देखिये।

Q. 4.—Indicate the three levels of the childs' thinking How do his ideas develope?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० २८ देखिये।

Q. 5.—Describe the different factors in the childs' learning

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ३३ देखिये।

Q. 6.—What is play? Describe the nature and functions of play in childs' life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ६४ देखिये।

Q. 7.—Define intelligence ? What do you understand by measurement of intelligence ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ३८ देखिये।

Q. 8.—Explain the role of maturation in emotional development.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १४ देखिये।

Q. 9.—Write notes on :—

(a) Reflexes. (b) Growth in child vocabulary.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० (a) २१ (b) ४६ देखिये।

1949 (ANNUAL)

Q. 1.—What are the methods employed in child psychology ? Which of them do you consider to be satisfactory ?

इसके लिये प्रश्न न० ५ का उत्तर देखिये।

Q. 2.—Give an account of the sensory-motor development of the child in the first years of life.

इसके लिये प्रश्न न० १७ और १६ देखिये।

Q. 3—To what extent human nature is inborn ? How is it modified by the environment?

इसके लिये प्रश्न न० ११ देखिये।

Q. 4.—Distinguish between the thinking of an adult and of children.

इसके लिये प्रश्न न० २६ देखिये।

Q. 5.—What is intelligence how can it be measured ?

इसके लिये प्रश्न न० ३४ देखिये।

Q. 6.—Explain the characteristics of early emotional patterns connected with anger and fear.

इसके लिये प्रश्न न० ३६ और ४६ देखिये।

Q. 7.—Indicate the different factors influencing the speech development of children.

इसके लिये प्रश्न न० ५२ देखिये।

Q. 8.—Distinguish between work and play. What are the functions and values of play in the life of children ?

इसके लिये प्रश्न न० ६५ देखिये।

Q. 9.—Distinguish between introversion and extroversion. How does an introvert react tuations in life ?

इसक लिये प्रश्न न० ७६ देखिये।

1949 (SUPPLL.)

Q. 1.—Give an account of the topics child phychology deals with. What is the practical value of child study ?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ४ और १ देखिये।

Q. 2.—Describe the main types of original responses in children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० २३ देखिये।

Q. 3.—What is maturation? What part does it play in the development of emotions?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १२ देखिये

Q. 4 Give an account of the methods employed by children in learning new responses.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ३१ देखिये।

Q. 5—Trace the social development of children during the first few years of life.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५३ देखिये।

Q. 6.—Describe the main stages in the language development of the child.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ५१ देखिये।

Q. 7.—Write a note on the imagination of children as indicated in their play.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७० देखिये।

Q. 8.—What is delinquency? How would you deal with delinquent children?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७४ देखिये।

Q. 9.—What is personality? Give an account of traits of personality.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० ७६ देखिये।

दूसरे भाग का उत्तर देने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि व्यक्तित्व के कई शीलगुण (traits) होते हैं लेकिन यहाँ हम प्रमुख शीलगुणों पर ही प्रकाश डालेंगे।

प्रधानता एवं विनीतता (ascendance and submission) का स्थान शीलगुणों में सर्वप्रथम आता है। इनका आविर्भाव बच्चों के जन्म काल के कुछ ही दिन पश्चात् हो जाता है। जो बच्चा प्रधानता शीलगुण से परिपूर्ण रहता है वह अन्य बच्चों पर अपना प्रभाव तथा अधिकार जमाता हैं। यह अधिकार निर्देश और बल दोनों से प्राप्त किया जाता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जिसमें यह शीलगुण रहता है वह बराबर दूसरों पर ही प्रभाव जमाता है। परिस्थिति के परिवर्तन से उसके इस शीलगुण में भी परिवर्त्तन हो जाता है और वह दूसरे बच्चे की प्रधानता स्वीकार करता है।

विनीतता का शीलगुण जिस बच्चे में होता है वह निरंतर दूसरे की प्रधानता स्वीकार करता है और बराबर विनम्र बना रहता है। परन्तु ये दोनों शीलगुण शिक्षा एवं अनुभव से परिवर्तित होते रहते हैं।

अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी (introversion and extroversion) के भी शीलगुण बच्चों में पाये जाते हैं। जो बच्चा अन्तर्मुखी होता है वह अकेला रहना पसन्द करता है इसलिये अपनी अवस्था के बच्चों में मिलने से डरता है। उसके स्वास्थ्य के लिये एकान्तवास आवश्यक होता है। इस प्रकार का बच्चा अपने भावों को व्यक्त करने में पूर्णतः असमर्थ होता है।

बहिर्मुखी बच्चा अन्तर्मुखी बच्चे से पूर्णतः भिन्न होता है। वह अपनी अवस्था के बच्चों के साथ खूब हिलमिल कर खेलता है। उसे झुंड में ही रहने में आनन्द आता है। वह अपनी मित्र मंडली के अनुरूप अपने को अभियोजित भी करता है।

अध्यवसायिता (persistence) का शीलगुण भी सभी बच्चों में न्यूनाधिक मात्रा में देखने को मिलता है। अध्यवसायिता का अर्थ होता है किसी कार्य को विघ्नोपस्थिति में भी करने की क्षमता। प्रायः देखने में आता है कि बच्चे किसी काम को करना प्रारम्भ करते हैं किन्तु जरा सी अड़चन पड़ जाने पर भी उसे छोड़ देते हैं। परन्तु कुछ ऐसे बच्चे और मनुष्य भी होते हैं कि जिस काम को हाथ में लेते हैं उसे बार-बार पछाड़ खाने पर भी करके ही दम लेते हैं। ऐसे ही लोग अपने जीवन में सफल मनोरथ भी होते हैं। आपत्तियों का अतिक्रमण करते हुए हाथ में लिये हुए कार्य को पूरा करना ही पुरुषार्थ है। यह शीलगुण जीवन में सफल होने में बहुत सहायक होता है।

1950 (ANNUAL)

Q. 1.—What is child psychology? What are its scope and uses?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० १ देखिये।

Q. 2.—Give an account of the main types of original responses in children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न न० २३ देखिये।

Q. 3.—What is maturation? What part does it play in the emotional development of the child?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० १४ देखिये ।

Q 4.—Write a note on Heredity and Environment.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ९ देखिये ।

Q. 5.—Indicate the various ways of measuring the intelligence of children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ३४ और ३५ देखिये ।

Q. 6.—Trace the social development of children.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० १४ देखिये ।

Q. 7.—What are the main characteristics of play? How does it differ from work? Is play a preparation for life?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ६०, ६१ और ६३ देखिये ।

Q. 8.—What is character? Show the influence of home and school on the formation of children's character.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७३ देखिये ।

Q. 9.—What are the main causes of delinquency? How would you guide a delinquent child?

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नं० ७४ और ७८ देखिये ।

1950. S,

Q. 1.—Is child Psychology a science ? How are experiments made in child psychology ? Illustrate.

इसके उत्तर के लिये प्रश्न नम्बर ७ का उत्तर देखें ।

Q. 2.—Give an account of the mental capacities of a new born baby.

इसके लिये नम्बर २३ का उत्तर देखें ।

Q. 3—What are the main features of children's thinking ? How do their ideas develop ?

इसके लिये नम्बर २५ और २८ का उत्तर देखें ।

Q. 4.—What are the chief characteristics of the process of learning in children ? Indicate the effects of practice on learning.

इसके लिये नम्बर ३१, ३२ का उत्तर देखें ।

Q. 5.—Write a note on children's fear, anger and love.

इसके लिये ४१ का उत्तर देखे ।

Q. 6.—What are the effects in children's early life of social contact with (a) other children, (b) adults ?

इसके लिये ५८ के उत्तर को देखे ।

Q. 7—Give a brief account of the process of development of language in children

इसके लिये प्रश्न ४५ देखे ।

Q. 8.—What sort of imagination is revealed in drawings and stories by children ? What is the value of the study of such drawings and stories ?

प्रश्न ६६ का उत्तर देखें।

Q. 9.—Indicate the different factors influencing the development of personality. What is meant by 'personality trait' ?

इसके लिये प्रश्न ७६ का उत्तर देखें।